पुराण-सूक्ति-कोष

सम्पादक

श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका — प्रो. प्रवीणचन्द्र जैन

सहायक सम्पादक

पं. भंवरलाल पोल्याका — सुश्री प्रीति जैन

संकलनकर्ता

डॉ. कस्तूरचन्द 'सुमन' — डॉ. बुद्धिचन्द जैन

प्रबन्ध सम्पादक

श्री नरेशकुमार सेठी

मंत्री

प्रबन्धकारिणी कमेटी

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

(राजस्थान)

विषय-सूची

दो शब्द

अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए 'मानव' को प्रकृति में जो भाषागत विशेषता प्राप्त है वह प्राणिजगत् में अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं है। भाषा के माध्यम से मानव अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। अपने विचारों को सर्वजनहिताय अभिव्यक्त करने एवं स्थायीरूप प्रदान करने का प्रयास ही साहित्य-सृजन का आधार है।

साहित्य जाति, धर्म, समाज, देश-विदेश की सांस्कृतिक स्थिति का परिचायक तो होता ही है साथ ही अतीत में घटित घटनाओं एवं तथ्यों का ज्ञान भी कराता है और भावी संभावनाओं के सम्बन्ध में सतर्क-सावधान भी करता है। साहित्य-सर्जक अपने मत या विचार के पोषण के लिए अथवा अपनी अभिव्यक्ति को सरस, सटीक एवं मर्मस्पर्शी बनाने के लिए सूक्तियों का प्रयोग करते हैं।

सूक्ति, साहित्य-उपवन में से चुने हुए कुछ शब्द-पुष्पों का सुनियोजित, सुन्दर संयोजन है। सूक्ति का शाब्दिक अर्थ है सु=सुन्दर, सुष्ठु; उक्ति=वचन, वाक्य अर्थात् वह वाक्य जो सुन्दर, मनोहारी एवं कर्णप्रिय हो और साथ में हितकारी हो। अहितकारी वाक्य 'सूक्ति' नहीं होता। अनुभवों का आधार, कुछ विशिष्ट शब्दों का कलात्मक संयोजन, मर्मस्पर्शी शैली और संक्षिप्तता सूक्ति की विशेषताएं हैं। सूक्ति में शाश्वत सत्य की धरा पर जीवन के गहन चिन्तन व अनुभवों का निचोड़ होता है।

सूक्ति का प्राण है—संप्रेषणीयता। सूक्ति बहुत कम शब्दों में अपने कथ्य की अभिव्यक्ति करती है जो गंभीर एवं सटीक होती है इसीलिए कथन की पुष्टि में सूक्तियां बहुत सहायक होती हैं और श्रोता के मन पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

साहित्य जगत् में तो सूक्तियों का प्रयोग बहुलता से पाया जाता ही है; झोंपड़ी से लेकर महलों तक, शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों में अपने दैनिक बोल-चाल में भी सूक्तियों का प्रयोग सामान्य बात है।

जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों, विषयों, प्रसंगों यथा-नीति, गुण, परम्परा, विश्वास, लोक-व्यवहार, सुख-समृद्धि, आपत्ति-विपत्ति, धार्मिक सिद्धान्त, उत्सव-त्यौहार आदि सभी से सम्बन्धित सूक्तियां जनसामान्य में प्रचलित व साहित्य में विद्यमान हैं / उल्लिखित हैं। एक ही अभिप्राय: को द्योतित करनेवाली सैकड़ों सूक्तियां विश्व की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होती हैं।

सूक्तियों की लोकप्रियता उनकी मूल्यवत्ता के कारण है। सूक्तियां साहित्य-दोहन से प्राप्त अमृत हैं। वास्तव में सूक्तियां कालजयी, देश-काल की सीमा से मुक्त, अ-मृत होती हैं।

भारत में प्राचीनकाल से ही सूक्ति-सुभाषित संग्रहों की सुदृढ़ परम्परा चली आ रही है। यत्र-तत्र बिखरी हुई दुर्लभ सामग्री को एक मंजूषा में संयोजित, एकत्रित, संगृहीत करना जिससे उसके गौरव-मूल्य-महत्त्व आदि से लाभ लेना मानव लिए सुलभ हो सके, यही उद्देश्य होता है सूक्ति संग्रह का।

पुराण सूक्तियों के भण्डार हैं। उनकी सूक्तियों से जनसामान्य लाभान्वित हों इसी दृष्टिकोण से जैनविद्या संस्थान द्वारा संस्कृत भाषा के पांच प्रमुख जैन पुराणों यथा-महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, पाण्डवपुराण एवं वीर वर्धमानचरित में से सूक्तियों का संकलन कर प्रकाशन किया जा रहा है।

ये सूक्तियां आचार-विचार, लोक-परलोक, जीवन-मृत्यु आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। इनमें कहीं गम्भीर दार्शनिकता का पुट है तो कहीं सहज व्यावहारिकता की झलक। कहीं सदाचार का पाठ है, कहीं परोपकार, दान, करुणा, आदि सुसंस्कारों की शिक्षा है तो कहीं अनीति के दुष्परिणामों से अवगत कराकर उनके लिये वर्जना। कहीं लौकिक धर्म की धारा प्रवाहित है तो कहीं वैराग्य की सरिता।

इन सूक्तियों के संकलन, सम्पादन, प्रूफरीडिंग हेतु सभी सहयोगी धन्यवादार्ह हैं।

जर्नल प्रेस के स्वामी श्री अजय काला भी इसके मुद्रण के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

जयपुर
वीर शासन जयन्ती
श्रावण कृ० १, वी. नि. सं. २५१३
११—७—८७

ज्ञानचन्द्र खिन्दूका
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति
श्रीमहावीरजी

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में जैन वाङ्मय का एक विशिष्ट स्थान है। जैन मनीषियों, आचार्यों आदि साहित्य-सर्जकों ने आयुर्वेद, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित, काव्य, नीति, संगीत, दर्शन, न्याय, कला, पुरातत्त्व, अध्यात्म आदि सभी विषयों पर अपनी गंभीर, सरस और प्रौढ़ लेखनी चलाई है।

जैन वाङ्मय की एक विधा है 'पुराण-साहित्य'। इसमें चौबीस तीर्थंकरों, बारह चक्रवर्तियों, नौ नारायणों, नौ प्रतिनारायणों और नौ बलदेवों इस प्रकार त्रेसठ शलाकापुरुषों (जैन परम्परा में मान्य प्रसिद्ध महापुरुषों) का विस्तृत जीवन-चरित, उनके पूर्वभव आदि का वर्णन होता है। साथ ही इनसे सम्बन्धित अन्य महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट पुरुषों के उपाख्यान भी पुराणों में निबद्ध हैं। पुराणों के सृजन का मुख्य प्रयोजन है कि इन महापुरुषों के चरित को जानकर हम भी उन जैसे धर्मपथिक, न्यायशील, अन्याय और पाप से दूर रहनेवाले परोपकारी, जनसेवी एवं आत्मबली बनें। अपने अधिकार की रक्षा और दूसरे पर आक्रमण न करने की वृत्ति अहिंसा है। ये सब प्रवृत्तियां लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। पुराण हमें इन्हीं प्रवृत्तियों की ओर प्रेरित करते हैं। इस दृष्टि से पुराण-साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

पुराण ज्ञान के सागर हैं। उनका अध्ययन/मंथन करते समय अनेक तथ्य उद्घाटित होते हैं, जीवन की कई दिशाएँ आलोकित होती हैं। अनुभव की अनेक शुक्तियां/सीपियां खुलती हैं और सूक्तिरूपी मुक्ता प्राप्त होते हैं।

संस्थान के विद्वानों ने पुराणों का परिशीलन करते समय इन्हें खोजा और संजोया है। ये सरस, सरल एवं भावप्रवण सूक्तियां वार्तालाप प्रवचन, भाषण

आदि में प्रयोग करने पर उन्हें न केवल सौष्ठव प्रदान करती हैं अपितु वक्ता एवं श्रोता दोनों के लिए शिक्षाप्रद सिद्ध होती हैं।

प्रस्तुत पुराण-सूक्तिकोष में ६५ विषयों से सम्बन्धित १०३२ सूक्तियां संगृहीत हैं जो जैनसाहित्य के प्रमुख पांच पुराणों यथा महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, वीर वर्द्धमानचरित (पुराण) एवं पाण्डवपुराण के गर्भ में अन्तर्निहित थीं।

जैनविद्या संस्थान के विद्वानों ने इन्हें संगृहीत करने का जो कार्य किया है वह उसी प्रकार का दुष्कर कार्य है जिस प्रकार गोताखोर गहन परिश्रम करके समुद्रतल से रत्नों को निकाल कर ले आता है।

हम इन विद्वानों को बधाई देते हैं, साथ ही जैनविद्या संस्थान की विद्वत्-रसिक समिति और संस्थान की संस्थापिका दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी दोनों धन्यवादार्ह हैं।

(डॉ.) दरबारीलाल कोठिया
सेवानिवृत्त रीडर, जैन, बौद्ध दर्शन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सम्पादकीय

पुराण भारतीय वाङ्मय के गौरव-ग्रन्थ हैं। जैन परम्परा में उनका और भी विशेष महत्त्व है। तीर्थंकरों की वाणी को विशिष्ट पारिभाषिक शब्द 'अनुयोग' नाम से व्यवहृत किया गया है। समग्र अनुयोग प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग इन चार भागों में विभक्त है। इनमें से प्रथमानुयोग के अन्तर्गत पुराणों को परिगणित किया जाता है ...

पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों में 'पूरणात् पुराणम्' भी अन्यतम व्युत्पत्ति है। जैन तीर्थंकरों की वाणियों का पूरण करने के कारण इस साहित्य का नाम 'पुराण' पड़ा। पूरक पदार्थ में मूल पदार्थ से भिन्नता होते हुए भी सादृश्य बना रहता है। उसमें मूल पदार्थ से एकजातीयता अनिवार्य है। फलतः पुराण तीर्थंकरों की ज्ञान एवं तपःसाधना के कारण अन्तःप्रस्फुटित वाणियों का शैली विशेष में उपस्थापन कर जनमानस का पथप्रदर्शक है। यह भी कहा जा सकता है कि पुराणों का तीर्थंकरों की वाणी से सीधा सम्बन्ध है।

जैन वाङ्मय में साहित्य, धर्म, दर्शन आदि की सतत प्रवाहशील धाराओं के साथ-साथ सूक्तिधारा भी प्रारम्भ से ही अविरल रूप से बहती रही है। जीवन की गहन अनुभूतियों को भारत के मनीषी आचार्यों, कवियों आदि ने काव्यमयी भाषा में जनमानस के कल्याण के लिए—लोककल्याण के लिए—प्रस्तुत किया है। इस प्रकार सूक्तियां भूतकाल की उपलब्धियों का सार तो हैं ही, वे वर्तमान युग के लिये पथ-प्रदर्शिका भी हैं। नैतिक उत्थान के प्रेरक अनेक पद्य अथवा पद्यात्मक रचनाएँ सूक्तियों के रूप में समाज में प्रचलित हो गई हैं जो आप्त-जन की तरह कठिन एवं गहन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करके समाज के लिए वरद सिद्ध

हुई हैं। संकटग्रस्त मानवमात्र को सूक्तियां बन्धुजन की भांति उचित मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

शाब्दिक दृष्टि से सुन्दरतापूर्वक कही गयी उक्ति के अर्थ में सूक्ति का प्रयोग होता है। संस्कृत वाङ्मय में सूक्ति का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया जाता है। सूक्ति वह पदरचना है जो स्वयं में परिपूर्ण हो और नैतिक, चारित्रिक, धार्मिक अथवा रागात्मक किसी एक विचार को प्रस्तुत करने में समर्थ हो। इस प्रकार वाक्पटुता के साथ कही गयी मुक्तक से साम्य रखनेवाली रचना को सूक्ति कहा जाता है। यद्यपि सूक्ति और सुभाषित दोनों ही मुक्तककाव्य में परिगणित हैं किन्तु प्रबन्धकाव्य की तरह दोनों के लिए किसी पूर्वापर सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती। जैसा पहले कहा गया है, वे अपने आप में पूर्ण एवं स्वतन्त्र होती हैं। दोनों उद्देश्य में भी समान ही हैं। इनमें अन्तर केवल इतना ही है कि सुभाषित विस्तार की दृष्टि से पूरे पद्य में रहता है जबकि सूक्ति श्लोकार्ध अथवा श्लोक के एक चरण में होती है।

सूक्तियां प्रायः दो कारणों से अत्यधिक प्रिय एवं अभिरुचि का विषय रही हैं। एक तो ये दुरूहता से मुक्त होती हैं। इनको समझने में कठिन श्रम एवं साधना की अधिक अपेक्षा नहीं रहती, दूसरे ये सरलता से कण्ठस्थ हो जाती हैं तथा समुचित अवसर पर आवश्यक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इनका प्रयोग होता रहता है।

आचार एवं व्यवहार सम्बन्धी इन सूक्तियों के महत्त्व को जितना प्रतिपादित किया जाय उतना कम होगा। मनीषियों ने अपनी अगाध अन्तर्चेतना एवं मनन के द्वारा समाज के लिए सूक्ति-धारा प्रवाहित करने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जीवन के सराग और वीतराग इन दोनों पक्षों की ओर उनकी दृष्टि रही है। दोनों ही पक्षों से सम्बन्धित सूक्तियों का अभिप्रेत समाज का उन्नयन रहा है।

जैनसाहित्य में सूक्तितत्त्व पूर्णरूप से विकसित हुआ है। इसके विकास-क्रम पर दृष्टिपात करने से इसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। विकास की प्रथम अवस्था है निर्देश। इसमें किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके उपदेश दिया जाता है। यह उपदेश नैतिक, धार्मिक आदि किसी भी विषय का हो सकता है। विकास के दूसरे चरण में सूक्ति व्यक्ति से उठकर समष्टि तक पहुंच जाती है। अब वह केवल व्यक्तिपरक न रहकर समाज में फैल जाती है।

सूक्तियों में विस्तार का अभाव होता है, पर उनकी संक्षिप्ति सहज ही तीक्ष्णता में परिणत हो जाती है। वह तीक्ष्णता मानव को कर्मठ बनाने में—सही मार्ग पर चलने में सहायक होती है।

सूक्तियों का संकलन कर कोश के रूप में उन्हें प्रस्तुत करने का महत्त्व भी कम नहीं है। कोष से सूक्तियों के रचयिताओं का तो बोध होता ही है साथ ही वे सहज ही विस्मृत भी नहीं हो पातीं।

प्रस्तुत सूक्तिकोष की रचना पुराणकोष तैयार करते समय आई हुई सैकड़ों सूक्तियों के अध्ययन से प्रेरणा पाकर हुई। इस कोष में संगृहीत सूक्तियों के स्रोत निम्नांकित पांच जैन पुराण हैं—

१. पद्मपुराण—रविषेणाचार्य (आठवीं शती विक्रम)

२. हरिवंशपुराण—जिनसेनाचार्य (नवीं शती विक्रम)

३. महापुराण—जिनसेनाचार्य द्वितीय एवं आचार्य गुणभद्र
(नवीं-दसवीं शती विक्रम)

४. वीरवर्धमानचरित (पुराण)–भट्टारक सकलकीर्ति (पन्द्रहवीं शती विक्रम)

५. पाण्डवपुराण—शुभचन्द्राचार्य (सत्रहवीं शती विक्रम)

ये पुराण विक्रम की आठवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक संस्कृत भाषा में विरचित दिगम्बर जैन पुराणों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

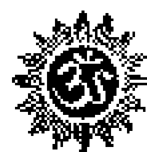
इस सूक्तिकोष से पुराणकारों की परिपक्व प्रज्ञा एवं प्रौढ़ प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इन सूक्तियों में संस्कृत काव्य-शैली का प्रकृष्ट रूप प्रस्फुटित हुआ है। इनमें मौलिकता भी है। इनकी भाषा चमत्कारपूर्ण, गागर में सागर भर देनेवाली है। पुराणकारों ने अपनी अमर कृतियों में सूक्ति रूपी मणि-मालाओं को इस प्रकार संजोया-पिरोया है कि वर्ण्य विषय शुष्क एवं नीरस न रहकर सरस एवं रुचिकर बन गया है। इस कोष में विविध विषयों पर आधारित १०३२ सूक्तियां संगृहीत हैं। इनसे जैनपुराणकारों की रचना-धर्मिता स्पष्टरूप से परिलक्षित होती है।

सूक्तियों के विषयों को वर्णक्रमानुसार विभक्त किया गया है एवं प्रत्येक सूक्ति के साथ ही उसके स्रोत का संकेत भी दिया गया है। सूक्ति के सामने उसका हिन्दी अनुवाद सरल और सुबोध भाषा में दिया गया है जिससे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठक भी सूक्ति का लाभ उठा सकें। समग्र रूप से जैन पुराणों की सूक्तियों के इस प्रकार के कोष का सम्पादन और प्रकाशन पहली बार हो रहा है। आशा है यह कोष पाठकों को रुचिकर और लाभप्रद सिद्ध होगा।

इस कोष की सूक्तियों का संकलन संस्थान के शोधसहायक डॉ. कस्तूरचन्द्र सुमन ने किया है, आरम्भ में थोड़ी सी सहायता डॉ. बुद्धिचन्द्र जैन ने भी दी थी।

इसके सम्पादन और प्रूफ संशोधन में सहायता मेरे सहयोगी पं. भंवरलाल पोल्याका और कु. प्रीति जैन ने दी है । मुद्रण जर्नल प्रेस के स्वामी श्री अजय काला ने किया है । इन सबकी सहायता के अभाव में तथा डॉ. गोपीचन्द्र पाटनी एवं संयोजक महोदय श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका की प्रेरणा के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव नहीं था । मैं इन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं ।

(प्रो.) प्रवीणचन्द्र जैन



पुराण सूक्ति-कोष

अनुप्रेक्षा

१ विनाऽनुप्रेक्षणैश्चित्तसमाधानं हि दुर्लभम् । म. पु. ४२.१२७

२ मनुष्यजीवितमिदं क्षणान्नाशमुपागतम् । प. पु. ११८.१०३

३ सर्वं भंगुरं विश्वसंभवम् । व. च. ५.१०१

४ क्षणध्वंसि जगत् । व. च. ११.१३३

५ विद्युच्चाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् । प. पु. ११०.५५

६ कस्यात्र वस्तुमूलत्वम् ? म. पु. ५६.११

७ कोऽत्र कस्य सुहृज्जनः ? प. पु. १२.५१

८ न कोऽपि शरणं जातु रुग्मृत्य्वादेस्तथाङ्गिनाम् । व. च. ११.१४

९ संसारे सारगन्धोऽपि न कश्चिदिह विद्यते । प. पु. ७८.२४

१० संसारं दुःखभाजनम् । प. पु. ८.२२०

११ संसारः सारवर्जितः । प. पु. १२.५०

१२ निःसारे खलु संसारे सुखलेशोऽपि दुर्लभः । म. पु. १७.१७

१३ असारोऽयमहोऽत्यन्तं संसारो दुःखपूरितः । प. पु. ३६.१७२

१४ प्राप्यते सुमहद्दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे । प. पु. ५.१२१

१५ दुःखं संसारसंज्ञकम् । प. पु. २.१८१

१६ एकाकिनैव कर्त्तव्यं संसारे परिवर्तनम् । प. पु. ५.२११

१७ एक एव भवभृत्प्रजायते मृत्युमेति पुनरेक एव तु । ह. पु. ६३.९२

१८ संसारोऽनादिरेवायं कथं स्यात् प्रीतये सताम् ? व. च. ६.२१

१९ सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् । प. पु. १४.४६

— अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन किये बिना चित्त का समाधान कठिन है।

— यह मनुष्य का जीवन क्षणभर में नष्ट हो जाता है।

— संसार में उत्पन्न सभी वस्तुएं क्षणभंगुर हैं।

— संसार क्षणभंगुर है।

— संसार बिजली के समान क्षणभंगुर तथा सारहीन है।

— इस संसार में किसी की भी जड़ मजबूत नहीं है।

— संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है।

— प्राणियों को रोग और मरण से बचाने के लिए कोई कभी शरण नहीं है।

— संसार में कुछ भी सार नहीं है।

— यह संसार दुःख का स्थान है।

— संसार असार है।

— इस असार संसार में लेशमात्र भी सुख दुर्लभ है।

— यह संसार असार और अत्यन्त दुःखों से भरा है।

— प्राणी संसाररूपी सागर में बहुत दुःख पाते हैं।

— दुःख ही संसार का दूसरा नाम है।

— जीव को संसार में अकेले ही परिभ्रमण करना पड़ता है।

— यह जीव अकेला ही जन्मता और अकेला ही मरता है।

— यह अनादि संसार सज्जन पुरुषों की प्रीति के लिए नहीं हो सकता।

— इस लोक में सब दुःख ही दुःख है, सुख तो कल्पनामात्र है।

अवसर की श्रेष्ठता

२० कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां मूर्ध्नि संस्थितम् । प. पु. २४. १००

२१ कालमिति कुरुते सर्वोऽपितत् । ह. पु. ६३.३१

अवस्था

२२ सर्वसाधारणं नृणामवस्थान्तरवर्तनम् । ह. पु. २१.३४

अशक्य

२३ भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथम् ? प. पु. ७.१६७

२४ अवलम्ब्य शिलाकण्ठे दोर्भ्यां तर्तुं न शक्यते । प. पु १२३.७५

२५ न हि सागररत्नानामुत्पत्तिः सरसो भवेत् । प. पु. ३१.१५५

२६ वालुकापीडनाद् बालस्नेहः संजायतेऽथ किम् ? प पु ११८.७६

२७ नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता ? प. पु. ११८.७६

आत्मा—जीव

२८ अन्तैः किं शुद्धिरात्मनः ? म पु. ७४.६३

२९ नात्मलाभात्परं ज्ञानम् । पा. पु. २५.११५

३० नात्मलाभात्परं सुखम् । पा. पु. २५.११५

३१ नात्मलाभात्परं ध्यानं । पा. पु. २५.११५

३२ नात्मलाभात्परं पदम् । पा पु. २५.११५

३३ कुरुध्वं चित्स्वबन्धुताम् । प. पु. १०६.१२६

३४ अनादिसिद्धो नास्तीह कश्चन । म पु. ४२.१०१

३५ याति जीवोऽयमेककः । प. पु. ३१.१४५

— समय का ज्ञान सब नयों से श्रेष्ठ है।

— अवसर को जानने वाला पुरुष निश्चय ही यथोचित कार्य करता है।

— मनुष्यों की अवस्थाओं का परिवर्तित होना सामान्य बात है।

— अमृत की बेल से विष की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

— कंठ में शिला बांधकर भुजाओं से तैरा नहीं जा सकता।

— समुद्र के रत्नों की उत्पत्ति सरोवर से नहीं हो सकती।

— बालू को पेलने से लेशमात्र भी तेल नहीं निकल सकता।

— पानी के मथने से मक्खन की प्राप्ति नहीं हो सकती।

— जल से आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती।

— आत्मलाभ से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है।

— आत्मलाभ से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

— आत्मलाभ से बड़ा कोई ध्यान नहीं है।

— आत्मलाभ से बड़ा कोई पद नहीं है।

— अपने चैतन्य स्वरूप के साथ बंधुता करो।

— कोई भी जीव अनादि से सिद्ध नहीं होता।

— यह जीव अकेला ही जाता है।

३६. पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति । प. पु. ३१.२३६

३७. भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दुःखेश्चितः सदा । प. पु. १७.१७५

३८. एकाकी जायते प्राणी ह्येको याति यमान्तिकम् । व. च. ११.३५

३९ विद्यते स प्रवेशो न यत्रोत्पन्ना मृता न च । व. च. ११.३९

४० कायचैतन्ययोर्नैक्यं विरोधिगुणयोगतः । म. पु. ५.५२

४१ विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम् । प. पु. ८५.९२

आयु

४२ प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः । प. पु. ४४.१००

४३ आयुर्वायुचलं । प. पु. ४६.१९२

४४ आयुर्जलं गलत्याशु । म. पु. ४८.९

४५ घटिकाजलधारेव गलत्यायुःस्थितिर्द्रुतम् । म. पु. १७.१६

४६ प्रतिक्षणं गलत्यायुः । म. पु. ८.५४

४७ आयुर्नित्यं यमाक्रान्तम् । व. च. ११.५

४८ आयुरेव निजप्राणकारणम्,
तत्क्षये भवति सर्वथा क्षयः । ह. पु. ६३.६९

४९ आयुःकर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते । प. पु. ५२.६६

आशा

५० किमाशा नावलम्ब्यते ? म. पु. ४३.३०५

— जैसे पक्षी वृक्ष को छोड़कर चला जाता है वैसे ही यह जीव शरीर को छोड़कर चला जायगा।

— चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करता हुआ जीव सदा दुःखी रहता है।

— जीव अकेला ही जन्म लेता और अकेला ही मरता है।

— संसार में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहां जीवों का जन्म और मरण नहीं हुआ हो।

— शरीर और चेतन में परस्पर विरोधी गुण होने से दोनों एक नहीं हो सकते।

— संसार में प्राणियों की चेष्टाएं नट की चेष्टाओं के समान विचित्र होती हैं।

— कर्म से प्रेरित मृत्यु अपने योग्य समय की प्रतीक्षा करती ही है।

— आयु वायु के समान चंचल है।

— आयु रूपी जल (हिम के समान) शीघ्र गलनशील है।

— आयु की स्थिति घटी—यन्त्र की जलधारा के समान शीघ्रता से कम होती रहती है।

— आयु प्रतिक्षण क्षीण होती जाती है।

— आयु सदैव यम से आक्रान्त है।

— आयु ही अपनी रक्षा का कारण है, उसका क्षय हो जाने पर सब प्रकार से क्षय हो जाता है।

— आयुकर्म की समाप्ति पर मृत्यु निश्चित है।

— आशा सब वस्तुओं की होती है।

५१ आशा हि महती नृणाम् । म. पु. ४३.२६८

५२ आशापाशवशाज्जीवाः मुच्यन्ते धर्मबन्धुना । प. पु. १४.१०२

आश्रय

५३ आश्रयः कस्य वैशिष्ट्यं विशिष्टो न प्रकल्पते ? म. पु. ५८.२८

५४ मलिनानपि नो धत्ते कः श्रितानपायिनः ? म. पु. ६.७९

५५ स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते । प. पु. ६१.४५

५६ आश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ? प. पु. ४७.२०

इच्छा

५७ सद्भृत्यमित्रसंबन्धाद् भवन्तीप्सितसिद्धयः । म. पु. ६८.६३८

५८ निःसारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् । प. पु. ३९.३६

५९ चिकित्सामनर्थिताम् । म. पु. ८.६७

६० सर्वो हि वाञ्छति जनो विषयं मनोज्ञम् । म. पु. २९.१५३

६१ आह्लादः कस्य वा न स्याद् ईप्सितार्थसमागमे ? म. पु. ४३.२८३

६२ जन्तुरन्तकदन्तस्थो हन्त जीवितमीहते । म. पु. ४९.४

६३ सोपाया हि जिगीषवः । म. पु. १५.९७

उन्नति

६४ सून्नतः कस्य नाश्रयः ? म. पु. १४.६४

६५ को न गच्छति संतोषमुत्तरोत्तरवृद्धितः ? म. पु. ७१.३९८

उपकार

६६ प्रणिपातावसानो हि कोपो विपुलचेतसाम् । पा. पु. २०.३५२

— मनुष्य की आशा बहुत बड़ी होती है।

— धर्मरूपी बंधु के द्वारा जीव आशा के पाश से मुक्त हो जाते हैं।

— विशिष्ट का आश्रय सबको विशिष्टता देता है।

— मलिन होते हुए भी निरुपद्रवी अधीनों को सब आश्रय देते हैं।

— जीव एक दिन के लिए भी जहाँ रहता है उससे उसकी प्रीति हो जाती है।

— आश्रय के सामर्थ्य से मनुष्यों को सब कुछ मिलता है।

— उत्तम सेवकों और मित्रों के सहयोग से इष्टसिद्धियां मिल जाती हैं।

— संसार में समस्त इच्छाएं निःसार हैं तथा दुःख का कारण हैं।

— अन्तविहीन इच्छा को धिक्कार है।

— सभी लोग मनोज्ञ विषय को ही चाहते हैं।

— अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति होने पर सबको आनन्द होता है।

— खेद है कि जीव, यम के दांतों के बीच रहकर भी जीवित रहना चाहता है।

— विजय के इच्छुक मनुष्य उपाय करते ही हैं।

— अच्छी तरह उन्नत हुआ व्यक्ति सबका आश्रय होता है।

— अपनी उत्तरोत्तर उन्नति से सब प्रसन्न होते हैं।

— उदारचित्तवालों का कोप विनतिपर्यन्त रहता है।

६७ उदारा भवन्ति हि दयापराः । प. पु. १२.१३१

६८ पापिनामुपकारोऽपि भुजंगपयसायते । म. पु. ४६.३१६

६९ अकारणोपकाराणामवश्यंभावि तत्फलम् । म. पु. ७५.३६५

७० कथं हन्या उपकारकरा नराः ? पा. पु. १२.२९७

७१ समाधये हि सर्वोऽयं परिस्पन्दो हितार्थिनाम् । म. पु. ११.७१

७२ भवेत्स्वार्थो परार्थता । म. पु. ५९.६५

७३ परोपकारवृत्तीनां पर तृप्तिः स्वतृप्तये । म. पु. ५९.६७

७४ मुख्यं फलं ननु फलेषु परोपकारः । म. पु. ७६.५५४

कथा

७५ यशस्यं सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् । प. पु. १.२५

७६ धन्यास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः । प. पु. १.३२

७७ सा कथा यां समाकर्ण्य हेयोपादेयनिर्णयः । म. पु. ७४.११

कलह

७८ कुटुम्बकलहो यत्र तत्र स्यात्स्थ्यं कुलस्तनम् । पा. पु. १२.७४

काम

७९ कामग्रहगृहीतस्य का मर्यादा क्रमोऽपि कः ? ह. पु. १७.१५

८० को विवेको हि कामिनाम् ? पा. पु. ८.७८

८१ मारसेवा न तृप्तये । पा. पु. ८.९८

८२ कर्मणा कलिलः कामी कुरुते किं न दुष्करम् ? पा. पु. ७.२१८

— उदार मनुष्य दयालु होते ही हैं।

— पापी पर (दुष्ट पर) उपकार करना सांप को दूध पिलाना है।

— बिना कारण (निःस्वार्थ) किये गये उपकार अवश्य ही फलदायी होते हैं।

— उपकार करनेवाले मनुष्य मारने योग्य नहीं हो सकते।

— परोपकारी पुरुषों की सम्पूर्ण क्रियाएँ दूसरों की भलाई के लिए ही होती हैं।

— परोपकार में स्वोपकार भी निहित है।

— परोपकारी के लिए दूसरों की सन्तुष्टि ही अपनी सन्तुष्टि है।

— सब फलों में परोपकार ही मुख्य फल है।

— सत्पुरुषों की कथा से उत्पन्न यश जब तक चन्द्र, सूर्य और तारे हैं तब तक रहता है।

— दांत वही हैं जो शान्त कथाओं के समागम से रंजित रहते हैं।

— कथा वही है जिसके श्रवण से हेय और उपादेय का निर्णय होता है।

— जिस परिवार में कलह हो वहां स्वास्थ्य नहीं रह सकता।

— कामी मनुष्य के लिए कोई मर्यादा और नियम नहीं होते।

— कामी जनों को विवेक नहीं रहता।

— काम सेवन से कभी तृप्ति नहीं होती।

— कर्म के वश में होकर कामी जीव प्रत्येक दुष्कार्य कर सकता है।

८३ का लज्जा कामिनां किल ? प. पु. ८.८०

८४ न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । प. पु. ३९.२०८

८५ स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ? प. पु. ४१.६२

८६ कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् प. पु. ४६.९३

८७ हेयोपेयविवेकः कः कामिनां मुग्धचेतसाम् । म. पु. ४५.१४३

८८ कामिनां क्वान्तरज्ञता ? प. पु. ४८.९६

८९ धिक्कामं धर्मदूषकम् । म. पु. ५९.२७०

९० दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् । प. पु. १०६.१०१

९१ चित्रं हि स्मरचेष्टितम् । प. पु. ४६.१८६

९२ समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते । प. पु. १२.३४

९३ कामासक्तमतिः पापो न किंचिद् वेत्ति देहवान् । प. पु. ८३.५३

९४ ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणां मदनो मतिसूदनः । प. पु. १२.३३

९५ कामार्चिषा परं दाहं व्रजन्ति कुत्सिता नराः प. पु. ३१.१३९

९६ परस्त्रीहरणं सत्यं दुर्गतेर्दुःखकारणम् । ह. पु. ४३.१८४

९७ परस्त्रीसंगपंकेन दिग्धोऽकीर्ति व्रजेत्पराम् । प. पु. ७३.६०

९८ परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयंकरः । प. पु. ४६.१२३

९९ ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः । प. पु. १०९.१५४

काय

१०० धर्मसाधनमाद्यं हि शरीरमिह देहिनाम् । ह. पु. १८.१४३

१०१ गते प्राणे क्व भवेत्सुप्रभा तनोः । म. पु. ७२.६४

— कामी जनों को लज्जा नहीं होती ।

— काम से ग्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूंघता है और न देखता है ।

— स्त्रियों का चित्तहरण करने में लगे हुए मानव सब कुछ कर सकते हैं ।

— कुशील मनुष्य का वैभव केवल मल है ।

— मोहग्रस्त कामियों को हेयोपादेय का ज्ञान नहीं होता ।

— कामी मनुष्यों को हिताहित का ज्ञान नहीं होता ।

— धर्म को दूषित करनेवाले काम को धिक्कार है ।

— सूर्य तो दिन में ही तपता है किन्तु काम दिन रात तपता रहता है ।

— काम की चेष्टाएँ विचित्र होती हैं ।

— काम समस्त रोगों में प्रधान है ।

— कामासक्त पापी व्यक्ति कुछ भी नहीं समझता ।

— बुद्धि को नष्ट करनेवाला काम हजारों बीमारियों में सबसे बड़ी बीमारी है ।

— क्षुद्र मनुष्य काम की ज्वाला से परम दाह को प्राप्त होते हैं ।

— सत्य है, पर स्त्री हरण दुर्गति के दुःख का कारण है ।

— पर स्त्री कर्दम से लिप्त पुरुष की अपकीर्ति होती है ।

— पर स्त्री की अभिलाषा अनुचित और अति भयंकर है ।

— जो परस्त्री-लम्पट हैं वे अवश्य ही दण्ड के पात्र हैं ।

— इस संसार में देहधारियों की देह ही धर्म का पहला साधन है ।

— प्राण निकल जाने पर शरीर शोभाविहीन हो जाता है ।

१०२ देहोऽयमध्रुवः । प. पु. १३.७९

१०३ जलबुद्बुदसमकायः सारेण परिवर्जितः । प. पु ५.२३७

१०४ शरद्घनइवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते । प. पु. १०.१५६

१०५ जलबुद्बुदनिःसारं कष्टमेतच्छरीरकम् । प. पु २९.७३

१०६ आनाय्ये नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा । प. पु. ११७.९

१०७ रोगोरगबिलं कायम् । क्ष. च. ११.५

१०८ अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगनिर्भरम् । प. पु. १२.५

१०९ रोगस्यायतनं देहम् । म. पु. ३६.१२४

११० रोगोरगाणां नु ज्ञेयं शरीरं वामलूरकम् । म. पु. ५२.४६

१११ सर्वस्य साधनो देहस्तस्याहारः सुसाधनम् । म. पु. ६८.३५७

कायर

११२ कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात् । प. पु. ७.२८०

११३ कातरस्य विषादोऽस्ति । प. पु. ३०.७३

कार्य/कारण

११४ कर्मैकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् । प. पु. ८९.९८

११५ यथया निर्मितं पूर्वंतथोग्यं जायतेऽधुना । प. पु. ३९.१४२

११६ फलति फलं स्वकर्म जगतां हि यथाविहितम् । ह. पु. ४९.१७

११७ जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वककारिणाम् । प. पु, १२.१६५

११८ नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ? प. पु. ७३.१२०

११९ निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ।

— यह शरीर अनित्य है।

— शरीर पानी के बबूले के समान सारहीन है।

— शरत्कालीन बादल के समान देह अकस्मात् ही नष्ट हो जाती है।

— "यह शरीर पानी के बुद्बुदे (बुलबुले) के समान निःसार है।"—यह बात बड़े कष्ट की है।

— इस मरणशील शरीर के लिए शोक करना व्यर्थ है।

— शरीर रोगरूपी सांप का बि लहै।

— रोगों से भरा प्राणियों का यह शरीर अल्पकालीन है।

— शरीर रोगों का घर है।

— यह शरीर रोगरूपी सर्पों का घर है।

— सबका साधन शरीर है और शरीर का साधन आहार।

— कायर पुरुष ही अपने प्रकृत लक्ष्य से भ्रष्ट होते हैं।

— कायर को विषाद होता है।

— संसार में धर्म का कारण कर्म ही प्रशंसा योग्य है।

— जीव पूर्वभव में किये कार्य के अनुसार ही जन्म लेता है।

— जगत् में जो जैसा करता है वैसा भरता है।

— बिना विचारे कार्य करनेवालों का कार्य विफल हो जाता है।

— लाभ की उपलब्धि मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती।

— विचारपूर्वक किये हुए कार्य से प्राणियों को सुख मिलता है।

१२० तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन परत्रेह च यत्सुखम् । प. पु. ७३.१०४

१२१ सहसारभ्यमाणं हि कार्यं व्रजति संशयम् । प. पु. ३७.६७

१२२ तत्कुर्यं धीमता येन हीहामुत्र सुखं यशः । व. च. ५.१०

१२३ अनाप्यं किं सदनुष्ठानसत्परैः ? म. पु. ५४.१२१

१२४ पर्यन्तवत्सला चेष्टा विश्वलोकसुखप्रदा । म. पु. ४६.५४

१२५ अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्युं निरर्थकाः । प. पु. ७.३२१

१२६ आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् । प. पु. ४६.७७

१२७ पुण्यातिलंघनं प्राहुरुभयत्राशुभावहम् । म. पु. ४४.३६

१२८ व्यसनस्फीतिकरं शिवेतरम् । प पु. १२३.१७१

१२९ दुष्कार्ये को न मुह्यति ? म. पु. ४४.६०

१३० अनालोचितकार्याणां किं सुखयात्यत् पराभवम् ? म. पु. ७१.३७४

१३१ अनिरूपितकार्याणां नेह नामुत्र सिद्धयः । म. पु. ३४.२८

१३२ न किंचिदप्यनालोच्य विधेयं सिद्धिकाम्यता । म. पु. २८.१४३

१३३ अकालसाधनं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते । म. पु. ७५.५८०

१३४ बुद्धिमर्षिसरी यस्य न निर्बन्धः फलत्यसौ । म. पु. ४६.६१

१३५ भस्मभावं गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा । प. पु. ४६.६६

१३६ प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादरः ? प. पु. ८६.१०२

— बुद्धिमान् मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुखदायी कार्य करना चाहिये।

— सहसा आरंभ किया हुआ कार्य संशय में पड़ ही जाता है।

— बुद्धिमानों के लिए वही करणीय है जिससे इस लोक और परलोक में सुख और यश प्राप्त हो।

— सत्कार्य करने में तत्पर मनुष्यों को सब सुलभ है।

— सत्पुरुषों की चेष्टा मेघ के समान सब लोगों को सुखप्रद होती है।

— जिन्होंने उत्तम कार्य नहीं किये हैं वे व्यर्थ ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

— आत्मा के लिए करनेवाले का कर्म महासुख का साधन होता है।

— पूज्य पुरुषों का उल्लघंन दोनों लोकों में अशुभकारक कहा गया है।

— बुरा कार्य कष्टों की वृद्धि करता है।

— बुरे कार्यों में सब मोहग्रस्त हो जाते हैं।

— बिना विचारे किये कार्य का फल पराभव के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

— बिना विचारे कार्यों से न तो इस लोक में और न परलोक में सिद्धि होती है।

— सफलता के इच्छुक पुरुष को बिना विचारे कुछ भी नहीं करना चाहिये।

— प्रतिकूल समय में प्रकट की हुई शूरता फलदायी नहीं होती।

— बुद्धिहीन प्रयत्न कभी सफल नहीं होता।

— घर के भस्म हो जाने पर कूप खुदाने का श्रम व्यर्थ है।

— घर में आग लग जाने पर तालाब खोदने से कोई लाभ नहीं।

१३७ अशक्यारम्भवृत्तीनां क्लेशादन्यत् कुतः फलम् । म. पु. ६८.१८०

१३८ तदकृत्यतरं येन निन्दा दुःखं पराभवम् । व. च. ५.१०

१३९ फलमस्थकार्यचर्याणां दुःसहा दुःखसंततिम् । म. पु. ६५.११३

१४० प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः । प. पु. ४४.१४६

१४१ कारणेन विना कार्यं न कदाचित् प्रजायते । ह. पु. ७.११

१४२ कारणे सति कार्यस्य किं हानिर्दृश्यते क्वचित् । म. पु. ५४.६६

१४३ न कारणाद्विना कार्यनिष्पत्तिरिह जातुचित् । म. पु. ५.१७

१४४ हेतुना न विना कार्यं । प. पु. १३.६९

१४५ न कार्यं बीजवर्जितम् । प. पु. २६.१५४

१४६ कारणाद्धि विना कार्यम् । म. पु. ६.२१

१४७ क्वचित्कदाचित्किं जायते कारणाद्विना ? म. पु. ७६.३८०

काव्य

१४८ कविरेव कवेर्वेत्ति कामं काव्यपरिश्रमम् । म. पु. ४३.२४

१४९ कवित्वे का दरिद्रता ? म. पु. १.१०१

क्रोध/क्षमा

१५० प्रतिशब्देषु कः कोपः ? प. पु. ६६.५४

१५१ न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः । प. पु. ४४ ६६

१५२ कोपोऽपि सुखदः क्वचित् । म. पु. ६८.१३८

१५३ कोपोऽपि क्वापि कोपोपलेपनापमुदे मतः म. पु. ६३.२५४

— अशक्य कार्यों को प्रारंभ करनेवाले मनुष्यों को क्लेश ही मिल सकता है।

— वही कार्य अकृत्य है जिससे निन्दा, दुःख और पराभव हो।

— अकार्य में प्रवृत्ति करनेवाले दुःसह्य दुःख संतति को प्राप्त होते हैं।

— अनर्थ प्रायः अनेक रूपों में आते हैं।

— कार्य की उत्पत्ति कभी भी कारण के बिना नहीं होती।

— कारण के रहते हुए कार्य की हानि नहीं होती।

— इस संसार मे कारण के बिना किसी भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती।

— कारण के बिना कार्य नहीं होता।

— कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता।

— कारण के बिना कार्य नहीं होता।

— बिना कारण के कभी कोई कार्य नहीं होता।

— कवि ही कवि के काव्यसृजन के परिणाम को जान सकता है।

— कविता करने में दरिद्रता नहीं बरतनी चाहिए।

— सुनी सुनाई बात पर क्रोध करने से कोई लाभ नहीं।

— कुपित शासक को शीघ्र प्रसन्न करना संभव नहीं है।

— कभी कभी क्रोध भी सुखदायी होता है।

— कभी कभी क्रोध से भी क्रोध दब जाता है।

१५४ कोपः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् । प. पु. ३१.१६७

१५५ भवेत्क्रोधादधोगतिः । प. पु. ७५.१२६

१५६ न हि प्रियजने कोपः सुचिरं किल शोभते । प. पु. ७७.४३

१५७ परलोकजिगीषूणां क्षमा साधनमुत्तमम् । म. पु. ३४.७७

१५८ अन्यथा किं न आप्यते ? म. पु. ४६.२५२

कृतज्ञता/कृतघ्नता

१५९ कृतं परेणाण्वुपकारयोगं, स्मरन्ति नित्यं कृतिनो मनुष्याः । प. पु. ४६.११८

१६० कृतोपकारिणे देयं किं न तत्कृतवेदिभिः । म. पु. ७०.२७८

१६१ असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः प. पु. ४६.६४

गुरु/गुरुभक्ति

१६२ विद्यालाभो गुरोर्वशात् । ह. पु. ९.१३०

१६३ उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् । ह. पु. १००.५२

१६४ किं न स्याद् गुरुसेवया ? ह. पु. ९.१३१

१६५ गुरौ भक्तिस्तु कामदा । पा. पु. १०.३०

गुण/गुणी

१६६ स्वभावः खलु दुस्त्यजः । प. पु. २८.१४३

१६७ भवेत्स्वभावो न ह्येकः कलहंसबकोट्योः । पा. पु. ७.१००

१६८ गुणज्ञता जगत्पूज्या गुणी सर्वत्र मन्यते । पा. पु. २.९९

१६९ गुणैराकर्ष्यते न कः ? म. पु. ११.३६

१७० गुणा हि गुणतां यान्ति गुण्यमानाः परान्नमैः । प. पु. ७३.७४

— क्रोध दीक्षित साधु को भी मोहान्ध बना देता है।

— क्रोध से अधोगति होती है।

— प्रियजनों पर अधिक समय तक के लिए क्रोध करना अच्छा नहीं है।

— परलोक सुधारने के लिए क्षमा उत्तम साधन है।

— क्षमा से सब कुछ हो सकता है।

— कृतज्ञ मनुष्य दूसरे के द्वारा किये हुए उपकार का निरन्तर स्मरण रखते हैं।

— कृतज्ञजनों द्वारा अपने उपकारी को सब कुछ देय है।

— कृतघ्न सत्पुरुषों से वार्तालाप करने योग्य नहीं है।

— विद्या की प्राप्ति गुरु से ही होती है।

— पात्र को उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्य हो जाता है।

— गुरुसेवा से सब कुछ हो सकता है।

— गुरुभक्ति इष्ट फल देती है।

— स्वभाव कठिनाई से छूटता/बदलता है।

— कलहंस पक्षी और बगुले का स्वभाव एकसा नहीं होता।

— गुणज्ञता संसार में पूज्य है और गुणी का सब जगह सम्मान होता है।

— गुणों से सभी वशीभूत हो जाते हैं।

— दूसरों द्वारा प्रशंसित गुण ही गुण कहलाते हैं।

१७१ अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् । प. पु. ७८.२६

१७२ दोषान् गुणान् गुणी गृह्णन् गुणान् दोषांस्तु
दोषवान् । म. पु. ४३.२०

१७३ दीप्तं हि भूषणं नैव भूषणान्तरमीक्षते । म. पु. २५.१६

१७४ गुणाधिको हि मान्यः स्याद् वन्द्यः पूज्यश्च सत्तमैः ।
म. पु. ४०.२०४

१७५ गुणाधिको हि लोकेऽस्मिन् पूज्यः स्याल्लोकपूजितैः ।
म. पु. ४०.१८५

१७६ स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः । प. पु. १७.३५७

१७७ गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः । प. पु. ५३.६१

१७८ गुणा गुणार्थिभिः प्रार्थ्याः । म. पु. ४८.५

१७९ गुणिसंगाद् गुणी भवेत् । पा. पु. २.६७

गृहस्थ

१८० मलिमसत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् । प. पु. ११०.७५

१८१ गृहपंजरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः । प. पु ११०.७३

१८२ कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः । प. पु. ३१.१३५

चरित्र

१८३ कायवाक्चेतसां वृत्तिः शुभा हितविधायिनी । प. पु. १७.१०८

१८४ दुराचारार्जितं पापं सच्चरित्रेण नश्यति । प. पु. ७२.४६

१८५ चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्महितोद्भवः । प. पु. ६७.३८

१८६ स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये । प. पु. ५६.३३

— विद्वान् उत्कृष्ट गुणवाले शत्रु की भी प्रशंसा करते हैं।

— गुणी पुरुष दोषों को गुणरूप से और दुष्ट लोग गुणों को भी दोषरूप से ग्रहण करते हैं।

— स्वयं देदीप्यमान आभूषण को दूसरे आभूषणों की अपेक्षा नहीं होती।

— गुणों की अधिकता से ही पुरुष सत्पुरुषों द्वारा मान्य और पूज्य होता है।

— इस संसार में अधिक गुणवान् पुरुष लोक पूजित पुरुषों द्वारा भी पूजा जाता है।

— गुणीजन वन में भी करने योग्य कार्य से नहीं चूकते।

— गुणवान्, उत्तम, धीर पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते।

— गुणार्थी गुणों की कामना करते हैं।

— गुणियों की संगति से गुण प्रकट होते हैं।

— गृहस्थ पड़े हुए शुक्ल वस्त्र के समान मलिनता को प्राप्त हो ही जाता है।

— गृहरूपी पिंजड़े को मूर्ख मनुष्य ही पसन्द करते हैं, बुद्धिमान् नहीं।

— काम और क्रोध आदि से पूर्ण गृहस्थ की मुक्ति नहीं हो सकती।

— मन, वचन, काय की शुभ प्रवृत्ति ही हितकारिणी है।

— दुराचार से कमाया हुआ पाप सच्चरित्र से नष्ट हो जाता है।

— वह चरित्र जिससे आत्मा का हित न हो, व्यर्थ है।

— मनुष्य का अपना चरित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म सुधार के लिए प्रेरित करता है।

चिन्ता

१८७ चिन्तया धीर्हि नश्यति । पा. पु. १२.२७६

जिनशासन

१८८ शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । प. पु. ३०.४७

१८९ जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् । प. पु. १०४.७०

जीवन-मृत्यु

१९० जीवितं ननु सर्वस्मादिष्टं सर्वशरीरिणाम् । प. पु. १५.१२७

१९१ यथा स्वजीवितं कान्तं सर्वेषां प्राणिनां तथा प. पु. ५.३२८

१९२ विद्युल्लताविलासेन सदृशं जीवितम् चलम् । प. पु. ५.२३७

१९३ जीवितं स्वप्नसन्निभम् । प. पु. ८३.४८

१९४ करिबालककर्णान्त चपलं ननु जीवितम् । प. पु. ३६.११३

१९५ जीवितं बुद्बुदोपमम् । प. पु. २१.११५

१९६ समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् । प. पु. ३८.६६

१९७ वपुः पक्ष्मपुटासक्तक्षणिकं ननु जीवितम् । प. पु. ८.२२६

१९८ जातानां हि समस्तानां जीवानां नियता मृतिः ह. पु. ६१.२०

१९९ मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । प. पु. ७२.९०

२०० जातेनाऽवश्यमर्तव्यमत्र संसार-पंजरे । प. पु. ११७.८

२०१ प्रतिक्रियाऽस्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि । प. पु. ११७.९

२०२ अनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् । प. पु. ११७.२८

२०३ मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा । प. पु. ३१.१३३

२०४ सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद्दुःखतः परम् । प. पु. २६.२६

— चिन्ता से बुद्धि नष्ट हो ही जाती है।

— अहो ! जिनशासन का बड़ा माहात्म्य है।

— जिनशासन ही परम शरण है।

— निश्चय ही प्राणियों को अपना जीवन सबसे अधिक प्रिय होता है।

— जैसे हमें अपना जीवन प्यारा (प्रिय) है वैसे ही (अन्य) सब प्राणियों को भी।

— जीवन बिजली की चमक के समान चंचल है।

— जीवन स्वप्न के समान है।

— जीवन हस्ति-शिशु के कानों के समान चंचल है।

— जीवन पानी के बुद्बुदों के समान है।

— संसार में समस्त वस्तुओं से जीवन ही प्यारा होता है।

— जीवन नेत्रों की टिमकार के समान क्षणभंगुर है।

— उत्पन्न हुए समस्त जीवों का मरण निश्चित है।

— संसार में मरण से बढ़कर दुःख नहीं है।

— संसाररूपी पिंजड़े के भीतर उत्पन्न हुए का मरण अवश्यंभावी है।

— अनेक उपायों के द्वारा भी मृत्यु का प्रतिकार नहीं किया जा सकता।

— माता से आश्लिष्ट प्राणी को मृत्यु हर लेती है।

— मृत्यु बालक अथवा तरुण की प्रतीक्षा नहीं करती।

— सब दुखों में मरणदुःख सबसे बड़ा दुःख है।

२०५ जातस्य नियतो मृत्युः । प. पु. ३०.११३

२०६ मूर्धोपकण्ठवसाद्यैमृत्युः कालमुदीक्षते । प पु. १११.१४

२०७ बलवद्भ्यो हि सर्वभ्यो मृत्युरेव महाबलः । प पु. ५.२६८

२०८ केनापि हेतुना किंवा न मृत्योर्हेतुता भजेत् ? म. पु. ४८.६१

२०९ आसन्नमृत्यूनां भवेत्प्रकृतिभ्रमः । प. पु. ६८.५३०

२१० नाकाले म्रियते कश्चिद्वज्रेणापि समाहतः । प. पु. ४६.३५

२११ मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विषतां प्रतिपद्यते । प. पु. ४६.३५

ज्ञान-अज्ञान

२१२ विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारिणी म. पु. १६.१०१

२१३ सम्यगाराधिता विद्या देवता कामदायिनी । म. पु. १६.९९

२१४ विद्याकामदुहा धेनुः । म. पु. १६.१००

२१५ विद्या चिन्तामणिर्नृणाम् । म पु. १६.१००

२१६ त्रिवर्गफलितां सूते विद्या सम्पत्परम्पराम् । म पु. १६.१००

२१७ विद्या यशस्करी पुंसां । म. पु. १६.९९

२१८ विद्या श्रेयस्करी मता । म. पु. १६.९९

२१९ विद्या सर्वार्थसाधिनी । म. पु. १६.१०१

२२० सहयायि धनं विद्या । म पु. १६.१०१

— जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु नियत है।

— मस्तक पर खड़ा हुआ काल अवसर की प्रतीक्षा करता है।

— मृत्यु सभी बलवानों से अधिक बलवान है।

— मृत्यु का कारण कोई भी हो सकता है।

— जिनकी मृत्यु निकट आ जाती है उनके स्वभाव में विभ्रम विकार हो जाता है।

— जब तक मृत्यु का समय नहीं आता तब तक वज्र से आहृत होने पर भी नहीं मरता।

— जब मृत्युकाल आ जाता है तब अमृत भी विष हो जाता है।

— विद्या (ज्ञान) मनुष्यों की बंधु है, मित्र है और कल्याण करने वाली है।

— अच्छी तरह से आराधित विद्या-देवता मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है।

— विद्या कामधेनु है।

— विद्या मनुष्यों के लिए चिन्तामणि के समान है।

— विद्या से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) रूपी सम्पदा उत्पन्न होती है।

— विद्या मनुष्यों को यशदात्री है।

— विद्या कल्याणकारी मानी गई है।

— विद्या सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली होती है।

— विद्या साथ जाने वाला धन है।

२२१ प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् । पा. पु. ५.६९

२२२ गृहीत्वा त्यज्यते यच्च प्राक् तस्याग्रहणं वरम् । पा. पु. ५.६३

२२३ सद्बुद्धिः सिद्धिदायिनी । म. पु. ५४.२१३

२२४ बोधिरेका सुदुर्लभा । प. पु. ११८.१०५

२२५ दुर्लभा बोधिरुत्तमा प. पु. ३२.६८

२२६ स्थितं ज्ञानस्य साम्राज्ये केवलं परिकीर्त्यते प. पु. १४.६७

२२७ ज्ञानेन ज्ञायते विश्वं धर्मपापं हिताहितम् । व. च. १८.१५

२२८ ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः । प. पु. ६७.३८

२२९ आसन्नमृत्यूनां सद्यो विध्वंसनं मतेः । म. पु. ६८.२६३

२३० नूनं विनाशकाले हि नृणां ध्वान्तायते मतिः । प. पु. ७७.५२

२३१ अज्ञानेन कृतं पापं यत्तज्ज्ञानेन मुच्यते । व. च. १०.६२

२३२ न मुह्यति प्राप्तकृतौ कृती हि । ह. पु. ३५.६२

२३३ पीयूषे हि करस्थेऽहो के भजन्ते विषं बुधाः । पा. पु. २५.१२५

२३४ प्राप्य चिन्तामणिं काचे को रतिं कुरुते पुमान् ?
पा. पु. २५.११६

२३५ सुधा मुधा न कुर्वन्ति किल्विषं कामवाञ्छया । पा. पु. ६.४३

२३६ उपायैर्हि प्रवर्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः । प. पु. ११७.६

२३७ विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः । म. पु. १६.६८

२३८ हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः । प. पु. ३०.७२

— कीचड़ लगाकर उसे धोने की अपेक्षा कीचड़ को न छूना ही अच्छा है।

— ग्रहण करके जो वस्तु छोड़नी पड़ती है उसको पहले ही छोड़ देना उत्तम है।

— सद्बुद्धि सिद्धि-दायक होती है।

— बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है।

— उत्तमबोधि दुर्लभ है।

— केवलज्ञान सब प्रकार के ज्ञानों से श्रेष्ठ है।

— ज्ञान के द्वारा ही सर्व धर्म-अधर्म और हित अहित की परीक्षा संभव है।

— उस ज्ञान से कोई लाभ नहीं है जिससे अध्यात्म का ज्ञान न हो।

— मरणासन्न व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

— विनाश के समय मनुष्यों की बुद्धि अन्धकारमय हो जाती है।

— अज्ञान से किया गया पाप ज्ञान से छूट जाता है।

— कुशल मनुष्य अवसर पाकर नहीं चूकता।

— अमृत हाथ में होने पर बुद्धिमान् विष-सेवन नहीं करते।

— चिन्तामणिरत्न के प्राप्त होने पर कोई भी काच से प्रेम नहीं करता।

— बुद्धिमान् कामेच्छा से व्यर्थ पाप नहीं करते।

— कुशलबुद्धि मनुष्य आत्महित के उपायों में ही प्रवृत्ति करते हैं।

— सभी कुशल व्यक्ति लोक में विद्यावान् का सम्मान करते हैं।

— चतुरजन हरण किए हुए, खोये हुए और नष्ट हुए का शोक नहीं करते।

२३९ को नाम स्पृहयेद्धीमान् भोगान् पर्यन्ततापिनः। म. पु. १८.१११

२४० शीतार्त्तः को न कुर्वीत सुधीरातप सेवनम्। म. पु. ११.६३

२४१ शंसन्ति निश्चिते कृत्ये कृतज्ञाः क्षिप्रकारिताम्। म. पु. ६८.४३८

२४२ ऋणव्रणाग्निशत्रूणां शेषं नोपेक्षते कृती। म. पु. ३४.४५

२४३ प्रयोजनवशात् प्राज्ञैः प्रास्तोऽपि परिगृह्यते। प. पु, ४३.२६१

२४४ प्राज्ञा हि क्रमवेदिनः। म. पु. ७३.१२३

२४५ प्राज्ञैः शोको न धार्यते। प. पु. ४८.११६

२४६ नाना युक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थवेदने। प. पु. ४८.१८८

२४७ महत्यावर्जिते वर्त्मन्यनन्धः कः परिस्खलेत्। म. पु. १.१६४

२४८ शरीरवस्य चात्मनः प्रादुर्भावनिवेदनम्। म. पु. ६२.११६

२४९ क्वापि कोपो न धीमताम्। म. पु. ६३.१२९

२५० आत्मवतां चित्तमात्मश्रेयसि रज्यते। म. पु. १०.१२४

२५१ सर्वचक्षुर्यः पतेत्कूपे तस्य चक्षुर्निरर्थकम्। व. च. १०.६२

२५२ प्राप्य चूडामणिं मूढः को नामात्रावमभ्यते? म. पु. ७५.५०१

२५३ किं वा दुष्करं मूढचेतसाम्। म. पु. ६७.४३

२५४ नमत्यज्ञोऽधिकं क्षतः। म. पु. ३१-१३६

२५५ अज्ञानेन हि जन्तूनां भवत्येव दुरीहितम्। प. पु. ११.३०५

२५६ ज्ञानहीनो न जानाति हेयादेयं गुणागुणम्। व. च. १९.१६

— कोई भी बुद्धिमान् अन्त में सन्तापदायी भोगों को नहीं चाहता है।

— बुद्धिमान् शीत से पीड़ित होने पर धूप का सेवन करता ही है।

— बुद्धिमान् निश्चित किए हुए कार्य में शीघ्रता करने की प्रशंसा करते हैं।

— ऋण, घाव, अग्नि और शत्रु के शेष भाग की बुद्धिमान् उपेक्षा नहीं करता।

— बुद्धिमान् हटाये हुए पुरुष को भी अपने प्रयोजनवश फिर स्वीकार कर लेते हैं।

— बुद्धिमान् मार्ग के जानने वाले होते हैं।

— बुद्धिमान् शोक नहीं करते।

— अर्थ प्रकट करने में विद्वानों की वचन-योजना विविध होती है।

— महापुरुषों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने वाला ज्ञानी मार्ग से स्खलित नहीं होता।

— आत्मज्ञानी शत्रु और रोग को उत्पन्न होते ही नष्ट कर देते हैं।

— बुद्धिमान् किसी पर भी क्रोध नहीं करते।

— आत्मज्ञानियों का चित्त आत्मकल्याण में ही अनुरक्त रहता है।

— आंख के होते हुए भी जो आदमी कुए में गिर जाय उसकी आंख निरर्थक है।

— चूडामणि को पाकर कोई मूर्ख भी उसका तिरस्कार नहीं करेगा।

— मूर्ख मनुष्यों के लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

— अज्ञानी अधिक दुःखी किए जाने पर ही नम्रीभूत होते हैं।

— अज्ञानवश जीवों से खोटे काम हो ही जाते हैं।

— ज्ञानहीन व्यक्ति हेय-उपादेय, गुण-अवगुण को नहीं पहचानता।

तप

२५७ शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम् । ह. पु. २१.९९

२५८ स्वाध्याय: परमं तप: । ह. पु. १.६६

२५९ ज्ञानहीनपरिक्लेशो भाविदु:खस्य कारणम् । म. पु. ७३.११४

२६० तपसा लभते दिवम् । प. पु. ११०.५०

२६१ जना निस्तपसोऽवश्यं प्राप्नुवन्ति फलोदयम् । प. पु. ८५.१७०

२६२ बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् । प. पु. १३.९२

२६३ लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते । प. पु. १३.६२

२६४ तप: परमदुष्करम् । प. पु. १०७.३२

२६५ ज्ञानस्य सत्फलं तेषां ये चरन्ति तपोऽनघम् । व. च. १०.६१

२६६ द्वादशभ्यस्तपोभ्योऽन्यत्तपो नाघक्षयंकरम् । व. च. १८.९

२६७ तपो हि शम उच्यते । प. पु. ६.२११

२६८ न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना । प. पु. ५६.३१

२६९ शुद्धं हि तप: सूते महत्फलम् । म. पु. ३४.२१४

२७० तपो हि फलतीप्सितम् । म. पु. ९.६३

२७१ ज्ञानं हि तपसो मूलं । म. पु. ३६.१४८

२७२ नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमा: । म. पु. २९.१०३

तेज

२७३ कस्य तेजसो वृद्धि: स्वामिन्यापदमागते ? प. पु. २.२०२

— शास्त्र का व्यसन अन्य व्यसनों का बाधक है।

— स्वाध्याय ही परम तप है।

— अज्ञानी का तप भावी दुःख का कारण है।

— तपसे स्वर्ग मिलता है।

— तप नहीं करने वाले संसार में कर्म का फल अवश्य भोगते हैं।

— समस्त बलों में तपोबल श्रेष्ठ है।

— तीनों लोकों में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो तप से सिद्ध नहीं हो सके।

— तप अतिदुष्कर होता है।

— ज्ञान का सत्फल उन्हीं को मिलता है जो निर्मल तप का आचरण करते हैं।

— द्वादशतपों के अतिरिक्त अन्य कोई तप पापों का क्षयकारी नहीं है।

— तप ही श्रम कहा जाता है।

— तप के बिना मनुष्यों के कर्म नष्ट नहीं होते।

— शुद्ध तप के परिणाम महान् होते हैं।

— तप से अभीष्ट सिद्धि होती है।

— ज्ञान ही तप का मूल (आधार) है।

— तप के तेज के कारण अत्यन्त दुर्गम महात्माओं को रोका नहीं जा सकता।

— स्वामी के विपद्ग्रस्त होने पर किसी के भी तेज की वृद्धि नहीं हो सकती।

२७४ प्रायस्तेजस्विसंपर्कस्तेजः पुष्णाति तादृशम् । म. पु. ३३.६१

२७५ स्त्रियन्ते न सहन्ते हि परिभूतिं सतेजसः । म. पु. ४४.१६७

त्याग

२७६ महतां हि ननु त्यागो न मतेः खेदकारणम् । म. पु. १४.३५७

२७७ त्याग एव परं तपः । म. पु. ४२.१२४

२७८ त्यागो हि परमो धर्मः । म. पु. ४२.१२४

दया

२७९ दीनान् दृष्ट्वा हि कस्यात्र दया नो जायते लघु? पा. पु. ७.१४३

२८० चिरञ्जीव्यं सुदयातिगम् । पा. पु. १२.३०७

२८१ धर्मः प्राणिदया । ह. पु. १७.१६४

२८२ किं न कुर्वन्ति कृच्छ्रेषु सुहृदो हिताः । म. पु. ७५.४४३

२८३ धर्मस्य हि दया मूलम् । प. पु. २.२८६

२८४ हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः । म. पु. २३.१०२

२८५ दयामूलो भवेद्धर्मः । म. पु. ५.२१

२८६ न किं वा सदनुग्रहात् ? म. पु. ६२.३७४

२८७ निर्दयानां हि का त्रपा ? पा. पु. १२.२०१

दान

२८८ जीविताम्मरणं श्रेष्ठं विना दानेन देहिनाम् । प. पु. १७६

२८९ दानात्किं नाप्यते ? व. च. १३.९७

२९० दानतः सातप्राप्तिः । प. पु. १२३.१०८

२९१ दानैर्भोगस्य सम्पदः । प. पु. १२३.१०७

— तेजस्वी जनों के संसर्ग से लोगों का तेज प्राय: बढ़ता ही है ।

— तेजस्वी पुरुष मर जाते हैं परन्तु पराभव सहन नहीं करते ।

— त्याग महापुरुषों की बुद्धि की खिन्नता का कारण नहीं ही होता ।

— त्याग ही परम तप है ।

— त्याग ही परम धर्म है ।

— इस संसार में दीनों को देखकर तत्काल मन में दया उत्पन्न होती है ।

— दयारहित जीवन को धिक्कार है ।

— जीवों पर दया करना धर्म है ।

— सहृदय व्यक्ति कष्ट में पड़े हुए लोगों का हित करते ही हैं ।

— धर्म का मूल दया ही है ।

— प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहने वाला अपना ही हित करता है ।

— दया धर्म का मूल है ।

— सज्जनों के अनुग्रह से सब कुछ होना सम्भव है ।

— निर्दयी को लज्जा नहीं होती ।

— प्राणियों के दया रहित जीवन से मरण श्रेष्ठ है ।

— दान से सब कुछ मिलता है ।

— दान से सुख की प्राप्ति होती है ।

— दान से भोग सम्पत्ति (भोग सामग्री) प्राप्त होती है ।

२९२ लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । प. पु. ४८.१७२

२९३ विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा । म. पु. ६० ८७

२९४ त्यागादिह यशोलभः । म. पु. ४२.१२४

२९५ अर्थिनो का युक्तायुक्तविचारणा ? म. पु. १८.१०९

२९६ ऐश्वर्यं पात्रदानेन । म. पु. ११०.५०

२९७ पात्रे दत्तं सुखाय हि । पा. पु. ७.६३

२९८ पात्रदानमहो दानम् । प. पु. ५३.१६४

२९९ पात्रदानात्परं दानं न च श्रेयोनिबन्धनम् । न. च. १५.७

३०० जायते ज्ञानदानेन विशालं सुखभाजनम् । प. पु. ३२.१५९

३०१ न ज्ञानात्सन्ति दानानि । म. पु. ५६.७३

३०२ अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । प. पु. ३२.१५५

३०३ आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । प. पु. ३२.१५४

वाहक

३०४ वाहकानां तु का कृपा ? पा. पु. १२.१४७

३०५ मरुत्सखस्य रौद्रस्य शिखिनः किमु दुष्करम् ? ह. पु. २३ १३६

दूरदर्शिता

३०६ विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिना । प. पु. १२.६४

३०७ क्षेमाय दीर्घदर्शित्वं कल्प्यते प्राणधारिणाम् । प. पु. १६.२३३

दैव/पुरुषार्थ/कर्म

३०८ सुखं वा यदि वा दुःखं, दत्ते कः कस्य संसृतौ । ह. पु. ६२.५१

३०९ पापपाकेन दौर्गत्यं सौगत्यं पुण्यपाकतः । ह. पु. ४३.१२१

— प्राप्त वस्तु का पुनः दान महाफल दायक है।

— प्रतिदान (प्रत्युपकार) के बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है।

— त्याग से ही इस लोक में कीर्ति का लाभ होता है।

— याचकों को योग्य और अयोग्य का विचार नहीं होता है।

— पात्रदान से ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

— पात्रदान में सुख होता है।

— पात्रदान ही बड़ा दान है।

— पात्रदान से अन्य और कोई दान कल्याणकारी नहीं है।

— ज्ञानदान से विशाल सुखों की उपलब्धि होती है।

— ज्ञानदान से बढ़कर अन्य दान नहीं है।

— अभयदान के पुण्य से यह जीव निर्भय होता है।

— आहारदान के पुण्य से यह जीव सब प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है।

— जलाने वालों को दया नहीं होती।

— वायु से प्रज्वलित भयंकर अग्नि के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।

— दीर्घदर्शी (दूरदर्शी) मनुष्य ही महत्वाकांक्षी होता है।

— दूरदर्शिता प्राणियों के कल्याण का कारण है।

— संसार में कोई किसी को सुख या दुःख नहीं देता।

— पाप के उदय से दुर्गति और पुण्य के उदय से सुगति प्राप्त होती है।

३१० ज्येष्ठो विधिर्गुरुः । ह. पु. ४२.७३

३११ सर्वे जीवाः स्वकृतभोगिनः । ह. पु. ६५.४७

३१२ कृत्स्नं स्वकृतभुग् जगत् । ह. पु. ६२.५०

३१३ कर्मण्युपस्थिते कोऽत्र बली ? पा. पु. १२.२७५

३१४ कर्मतो बलवान्नान्यो वर्तते भववासिनाम् । पा. पु. १२.२७१

३१५ कर्मणा कलिताः सन्तः सन्तः सीदन्ति संसृतौ । पा. पु. १२.१५८

३१६ दैवे तु कुटिले तस्य स यत्नः किं करिष्यति । ह. पु. ६२.४६

३१७ दुर्वारा भवितव्यता । ह. पु. ६१.७७

३१८ परमो हि गुरुर्विधिः । प. पु. १७.८४

३१९ कृत्स्नं विधिवशं जगत् । प. पु. ४५.५२

३२० कर्म विचित्रत्वाज्जगतस्य विचेष्टितम् । प. पु. १२२.१६

३२१ चित्रा हि चेतसो वृत्तिः प्रजानां कर्महेतुका । प. पु. ६.४१३

३२२ निकाचितं कर्म नरेणयेन
यत्तस्य भुङ्क्ते स फलं नियोगात् । प. पु. ७२.६७

३२३ न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् । प. पु. ७२,८७

३२४ लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् । प. पु. ७२.८७

३२५ कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं
सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात् । प. पु. ८३.१३४

३२६ कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां फलम् । प. पु. १३.६८

३२७ कर्मणामुचितं तेषां सर्वं फलमुपाश्नुते । प. पु. ३१.७६

३२८ शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा । प. पु. ३० २४

३२९ उपर्यधस्ता यान्ति जीवाः कर्मवशं गताः । प. पु. १०९.६६

— कर्म सबसे बड़ा गुरु (शिक्षक) है।

— सब जीव अपने किए का फल भोगते हैं।

— समस्त संसार अपने किये का फल भोगता है।

— इस संसार में कर्मोदय से अधिक बलवान् कोई नहीं है।

— संसारी प्राणियों के लिए कर्म से अधिक बलवान् अन्य कोई नहीं है।

— कर्म से घिरने पर सज्जन इस संसार में दुःखी होते हैं।

— भाग्य के कुटिल होने पर यत्न (उद्योग) कुछ नहीं कर सकता।

— होनहार दुर्निवार है।

— दैव ही सबसे बड़ा गुरु है।

— समस्त संसार कर्म के अधीन है।

— कर्मों की विचित्रता के कारण मन की विविध चेष्टाएं होती हैं।

— अपने कर्मों के कारण लोगों की चित्तवृत्ति विचित्र होती है।

— जिस मनुष्य ने निकाचित कर्म बांधा है वह उसका फल नियम से भोगता है।

— स्वकृत भोगी प्राणियों की दैव के आगे कोई शूरता नहीं चलती।

— मिलनेवाली वस्तु मिलती ही है उससे बचा नहीं जा सकता।

— पूर्व में किए हुए अशुभ कर्म बाद में उग्र सन्ताप उत्पन्न करते हैं।

— प्राणियों को कर्म अनुसार ही फल मिलता है।

— सबलोग कर्मों का उचित फल भोगते हैं।

— होनहार को इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता।

— प्राणी कर्मवश ऊंची और नीची गति को प्राप्त करते रहते हैं।

३३० नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां कोऽनुशोचति कोविदः । प. पु. ३१.२१७.

३३१ अवश्यं भावुकस्तीव्रो विरहः कर्मनिर्मितः । प. पु. ११३.१०

३३२ स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किं करिष्यन्ति देवताः । प. पु. १२३.४०

३३३ देवासुरमनुष्येन्द्राः स्वकर्मवशवर्तिनः । प. पु. ११३.११

३३४ नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्मपाकमुपागतम् । प. पु. १७.८१

३३५ इदं कर्मविचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । प. पु. ४१.१०५

३३६ यद्यथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा । प. पु. ४१.१०२

३३७ न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा । प. पु. ४९.७

३३८ पित्रादीनपि विध्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः । प. पु. ५२.६४

३३९ कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः । प. पु. ४६.६२

३४० विचित्रा कर्मणां गतिः । म. पु. १०.११९

३४१ कर्मवशाज्जन्तुः संसारे परिवर्तते । म. पु. ५९.२६२

३४२ गतयो भिन्नधर्माणः कर्मभेदेन देहिनाम् । प. पु. ७५.२४०

३४३ नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तवः । प. पु. ११.१२३

३४४ शुभाशुभविपाकानां भाविनां को निवारकः । म. पु. ६८.४३५

३४५ गतयः कर्मणां कस्य विचित्राः परिनिश्चिताः ? प. पु. १७.८६

३४६ जगत्प्राणिहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः । प. पु. ४६.३१

३४७ प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यम् । प. पु. ७७.४८

३४८ स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः । प. पु. ७७.६९

— कर्मों की स्थिति नाना प्रकार की है, बुद्धिमान् इसका शोक नहीं करते।

— कर्माधीन तीव्र वियोग अवश्यंभावी है।

— कर्माधीन लोगों का देव भी कुछ नहीं कर सकते।

— देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र सब अपने अपने कर्म के अधीन होते हैं।

— पूर्वोपार्जित कर्मों का फल आँखें बन्द करके (धैर्यपूर्वक) सहन करना चाहिये।

— कर्मों की विचित्रता के कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है।

— होनी को कोई नहीं टाल सकता।

— देव भी कर्मों को बदल नहीं सकते।

— कर्मबल से प्रेरित होकर मनुष्य पिता आदि को भी मार डालते हैं।

— कर्मोदय के कारण सब एक समान क्रियाशील नहीं होते।

— कर्मों की गति विचित्र होती है।

— कर्म के वश से जीव संसार में परिवर्तन (परिणमन) करता रहता है।

— कर्मों के भेद से जीवों की गतियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

— प्राणी कर्मों के द्वारा नचाये जाते हैं।

— शुभाशुभ कर्म के उदय को कोई रोक नहीं सकता।

— कर्मों की विचित्र गति को कोई नहीं जान पाता।

— निस्सन्देह संसार के प्राणी पूर्वभव में जो कुछ करते हैं, इस भव में उसका फल अवश्य पाते हैं।

— जो वस्तु प्राप्त होनी है वह अवश्य ही प्राप्त होती है।

— सभी प्राणी अपने कर्मों का फल प्राप्त करने में ही प्रवृत्त हैं।

३४९ जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा । प. पु. ११२.६०

३५० श्रियः कर्मानुभावेन । प. पु. १०६.१६८

३५१ माहात्म्यं कर्मणामेतदसंभाव्यमवाप्यते । प. पु. १०६.२११

३५२ प्रत्याहृत्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् । प. पु. १०६.२१८

३५३ कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् । प. पु. ११०.३९

३५४ सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः । प. पु. ११०.४५

३५५ कर्मबन्धस्य चित्रत्वान्न सर्वो बोधिभाग्जनः । प. पु. १०६.१२८

३५६ बलानां हि समस्तानां बलं कर्मकृतं परम् । प. पु. १०.२७

३५७ चित्रं विलसितं विधेः । म. पु. ६२.५०८

३५८ विचित्रा विधिचोदना । म. पु. ६२.३५६

३५९ यस्य यद्भावि तत्किमन्यथा । क्ष. च. २.९१

३६० विधिरेव जगद्गुरुः । ह. पु. ३१.३८

३६१ दुर्लङ्घ्या भवितव्यता । ह. पु. ६२.४४

३६२ विधिः किं न करोति हि । पा. पु. ७.२२१

३६३ स्वकृतविधिविधानात्कस्य किं वा न स्यात् । म. पु. ७२.२८५

३६४ अलंघ्यं केनचिच्चात्र प्रायेण विधिचेष्टितम् । म. पु. ६८.३५०

३६५ विधेर्विलसितं चित्रमगम्यं योगिनामपि । म. पु. ७१२.२९९

३६६ किं न स्यात् सम्मुखे विधौ ? म. पु. ६५.१४८

३६७ दैवस्य कुटिला गतिः । म. पु. ७५.७५

३६८ विचित्रा विधिवृत्तयः । म. पु. ४५.७६

— प्राणी का अपना कर्म ही उसका बन्धु या शत्रु है।

— बुद्धि कर्म के अनुसार होती है।

— कर्मों के माहात्म्य से असंभव वस्तु प्राप्त हो जाती है।

— किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है।

— कर्मों की विचित्रता के कारण यह चराचर विश्व विचित्र है।

— सभी प्राणी कर्मों के वश से (अपनी अपनी) वृत्ति में लगे हुए हैं।

— कर्मबंध की विचित्रता होने से सभी ज्ञानी नहीं हो जाते।

— सब बलों में कर्मकृत बल ही सबसे अधिक बलवान् है।

— कर्मों की गति बड़ी विचित्र है।

— कर्मों की प्रेरणा विचित्र होती है।

— जिसका जो भवितव्य होता है वह अन्यथा नहीं हो सकता।

— विधि ही संसार का गुरु है।

— होनहार टाला नहीं जा सकता।

— विधाता सब कुछ कर सकता है।

— अपने किए कर्मों के अनुसार सबको सब कुछ मिल जाता है।

— इस संसार में विधाता की चेष्टाओं का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता।

— भाग्य की विचित्रता योगियों द्वारा भी अगम्य है।

— भाग्य की अनुकूलता से सब कुछ हो सकता है।

— भाग्य की गति बड़ी कुटिल होती है।

— भाग्य की लीला विचित्र होती है।

३६९ बिना दैवात्कुतः श्रियः ? म. पु. ६८.४८४

३७० नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृताः । प. पु. १०५.११७

३७१ दुरन्तः कर्मणां पाको यथास्ति कटुकं फलम् । म. पु. १०.३०

३७२ योग्ये समुद्यमो युक्तो । पा. पु. १२.२१८

३७३ अदृश्यमपि संप्राप्यं सत्फलं व्यवसायतः । म. पु. ६८ ७४

३७४ धिग्दैवं पौरुषापहम् । पा. पु. १२.३३७

३७५ भवत्यर्थस्य संसिद्ध्यै केवलं च न पौरुषम् । प. पु. १२.१६६

३७६ उपायो निष्फलः कस्य न विषादाय धीमतः । म. पु. ४८.६५

धर्म/अधर्म

३७७ क्रोधलोभसुगर्वाणां त्यागो हि वृष उच्यते । पा. पु. १८.११०

३७८ आपदाः धर्मतः पुंसां सम्पदार्थं भवेल्लघु । पा. पु. १७.१६०

३७९ प्राणीप्सित सुशर्माणि जायन्ते धर्मतो ध्रुवम् । पा. पु. १७.१५७

३८० धर्मस्यैव विजृम्भितेन भविनां किं किं न बोभूयते ?
पा. पु १२.३६७

३८१ वृषात् वारीयते वह्निर्जलधिः स्थलति ध्रुवम् । पा. पु. १२.१७१

३८२ धर्मो जीवदया धर्मः सत्यवाक् संयमस्थितिः । पा. पु. ३.२४०

३८३ धर्मादिश्वर्यनिष्पत्तिस्त्रिषु लोकेषु भाषिता । ह. पु. १८.३५

३८४ धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम् । ह. पु. १८.३७

३८५ धर्म एव परं लोके शरणं शरणार्थिनाम् । ह. पु. १८.३९

— दैव के बिना लक्ष्मी प्राप्त नहीं हो सकती।

— पाप-भार से बोझिल जीव नरकों में उत्पन्न होते हैं।

— बुरे कर्मों का फल कड़वा होता है।

— योग्य कार्य में उद्यम करना उचित है।

— उद्यम से अवश्य उत्तम फल भी प्राप्त हो जाता है।

— पौरुष को नष्ट करनेवाले भाग्य को धिक्कार है।

— केवल पुरुषार्थ ही कार्य सिद्धि का कारण नहीं है।

— फलहीन प्रयत्न प्रत्येक बुद्धिमान् को दुःखी करता ही है।

— क्रोध-लोभ और गर्व का त्याग ही धर्म कहा जाता है।

— धर्म के कारण आपत्तियां भी पुरुषों को शीघ्र ही सम्पत्ति प्राप्त करा देती हैं।

— धर्म से प्राणियों को निश्चित रूप से इष्ट सुखों की प्राप्ति होती है।

— धर्म के प्रभाव से मनुष्य को सब कुछ मिल जाता है।

— धर्म के प्रभाव से अग्नि जलरूप हो जाती है, समुद्र स्थल के समान हो जाता है।

— जीवों पर दया करना, सत्य बोलना और संयम पालना धर्म है।

— तीनों लोकों में त्रिवर्ग की प्राप्ति धर्म से ही कही गई है।

— धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है।

— शरणार्थी-जनों के लिए लोक में धर्म ही उत्तम शरण है।

३८६	धर्मो जगति सर्वेभ्यः पदार्थेभ्य इहोत्तमः ।	ह. पु.	१८.३८
३८७	धर्मस्यैव विजृम्भितेन भुवने मान्यो जनो जायते ।	पा. पु.	२.२४६
३८८	धर्मेण लभते सौख्यम् ।	पा. पु.	१८.१८८
३८९	पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्मो हस्तावलम्बनम् ।	ह. पु.	२१.२४५
३९०	लोकधर्मप्रियो जनः ।	म. पु.	१५.७२
३९१	धर्मः कल्पद्रुमश्चिन्तारत्नं धर्मो निधानकम् ।	क्ष. च.	११.१२०
३९२	अहिंसाविरतेभ्योऽन्यापरो धर्मो न तत्त्वतः ।	व. च.	१८.४
३९३	कार्यो धर्मो यथाशयः ।	व. च.	१९.१९३
३९४	धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणम् ।	प. पु.	१३.३१०
३९५	सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रदः ।	प. पु.	१४.१५५
३९६	नैव किञ्चिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ।	प. पु.	१४.२२५
३९७	धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ।	प. पु.	४.३९
३९८	दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवचनोद्गतः ।	प. पु.	४९.१०६
३९९	प्राणिनां रक्षणे धर्मः ।	प. पु.	१२.१३२
४००	धर्मेण रहितैर्लभ्यं नहि किञ्चित्सुखावहम् ।	प. पु.	६१.४८
४०१	धर्मः प्राणिदया स्मृता ।	प. पु.	२६.६४
४०२	सहगामि सुधर्मश्च पाथेयं परजन्मनि ।	व. च.	१८.७
४०३	धर्मात्सर्वार्थसंसिद्धिः ।	व. च.	५.६२
४०४	धर्मादिष्टार्थसंप्राप्तिः ।	व. च.	५.१४३
४०५	शौचं कार्यं न नीरङ्कुशम् ।	व. च.	६.९

— इस संसार में धर्म सब पदार्थों में उत्तम है।

— धर्म के माहात्म्य से ही प्राणी जगत् में मान्य होता है।

— धर्म से सुख मिलता है।

— पापरूपी कुए में डूबे हुए मनुष्यों के लिए धर्म हाथ का सहारा है।

— लोगों को लौकिक-धर्म प्रिय होता है।

— धर्म ही कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और सब रत्नों की खान है।

— अहिंसादि व्रतों से बढ़कर वस्तुतः अन्य कोई धर्म नहीं है।

— दयामय धर्म ही सेव्य है।

— धर्म सुखोत्पत्ति का मूल है और अधर्म दुःख का कारण है।

— धर्म ही समस्त इन्द्रियों को सुख देनेवाला तीनों लोकों में सारभूत तत्त्व है।

— धर्म के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है।

— धर्म से बढ़कर देहधारियों का लोक में कोई दूसरा मित्र नहीं है।

— अर्हत् के मुखारविन्द से प्रकट धर्म दुर्लभ है।

— प्राणियों की रक्षा करना धर्म है।

— धर्मरहित प्राणी किसी सुखदायी वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते।

— जीव-दया धर्म है।

— सुधर्म के अतिरिक्त परजन्म में साथ जानेवाला अन्य कोई पाथेय नहीं है।

— धर्म से सब अर्थों की सिद्धि होती है।

— धर्म से इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है।

— जल से शुद्धि शौचधर्म नहीं है।

४०६	धर्मसमो बन्धुर्नान्यो लोकत्रये क्वचित् ।	व. च.	६.१५४
४०७	धर्मद्रुहे न स्युः सुखान्यभीष्टसंपदः ।	व. च.	७.५७
४०८	धर्मोऽधर्महरः ।	व. च.	७.१२५
४०९	धर्मो भास्वत्परो जगत्सुशिवकृत् ।	व. च.	७.१२५
४१०	धर्मः कल्पतरुः स्थेयात् ।	म. पु.	२.३४
४११	विना धर्मान्न सम्पदः ।	म. पु.	५.१८
४१२	धर्मफलं हि शर्म ।	म. पु.	१६.२७३
४१३	धर्मो बन्धुश्च मित्रञ्च धर्मोऽयं गुरुरङ्गिनाम् ।	म. पु.	१०.१०९
४१४	धर्मादिष्टार्थसम्पत्तिः ।	म. पु.	५.१५
४१५	धर्मो हि शरणं परम् ।	म. पु.	६.२०
४१६	धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वशरीरिणाम् ।	प. पु.	३८.२४
४१७	अहिंसादिगुणाढ्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ?	प. पु.	८०.१३८
४१८	किन्नु धर्मस्य दुष्करम् ।	प. पु.	९१.१८
४१९	धर्मो नाम परो बन्धुः ।	प. पु.	८५.२१
४२०	दयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् ।	प. पु.	८५.२३
४२१	धर्मो रक्षति मर्माणि ।	प. पु.	७४.५६
४२२	धर्मो जयति दुर्जयम् ।	प. पु.	७४.५६
४२३	सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ।	प. पु.	३९.३५
४२४	धर्मध्वंसे सतां ध्वंसः ।	म. पु.	७६.४१८
४२५	कस्य न धर्मः प्रीतये भवेत् ?	म. पु.	७५.६८८
४२६	धर्म एव परं मित्रम् ।	म. पु.	५९.२७०

— तीन लोक में कहीं भी धर्म के समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है।

— धर्म के बिना पुत्रादि अभीष्ट सम्पदाएं प्राप्त नहीं होतीं।

— धर्म अधर्म का हर्ता है।

— धर्म के अतिरिक्त संसार में अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है।

— धर्म स्थिर रहनेवाला कल्पवृक्ष है।

— धर्म के बिना सम्पदा नहीं होती।

— सुख धर्म का ही फल है।

— धर्म ही जीवों का बन्धु है, मित्र है और गुरु है।

— धर्म से यथेष्ट सम्पत्ति मिलती है।

— धर्म ही परम शरण है।

— धर्म ही एक सार है, देहधारियों का वही महाबन्धु है।

— अहिंसादि गुणों से युक्त धर्म के लिए कोई बात कठिन नहीं है।

— धर्म के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।

— धर्म ही परम बन्धु है।

— दयामूलक धर्म ही कल्याणकारी है।

— धर्म मर्मस्थानों की रक्षा करता है।

— धर्म से दुर्जेय शत्रु भी जीता जाता है।

— संसार में सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुख का आधार है।

— धर्म के नष्ट होने पर सज्जनों का नाश हो जाता है।

— धर्म सबको प्रिय होता है।

— धर्म ही परम मित्र है।

४२७ नहि हितमिह किंचिद्धर्ममेकं विहाय । म. पु. ७१.४६२

४२८ धर्मो ह्यापत्प्रतिक्रिया । म. पु. ४२.११५

४२९ धर्मो हि निधिरक्षय: । म. पु. २.३४

४३० धर्मो हि मूलं सर्वासां धनर्द्धिसुखसंपदाम् म. पु. २.३३

४३१ धर्म: कामदुधा धेनु: । म. पु. २.३४

४३२ धर्मश्चिन्तामणिर्महान् । म. पु. २.३४

४३३ धर्मस्थो हि जनोऽन्यस्य दण्डप्रस्थापने प्रभु: । म. पु. ४०.१९९

४३४ धर्म्या न सहन्ते स्थितिक्षतिम् । म. पु. ६२.३४७

४३५ धर्मात्मनां चेष्टा प्राय: श्रेयोऽनुबन्धिनी । म. पु. २४.६

४३६ नाधर्मात्सुखसम्प्राप्ति: । म. पु. ५.१९

४३७ मौर्ख्यं स्थिरधर्मेण । म. पु. १०.११९

ध्यान

४३८ नात्मध्यानात्परं ध्यानं । क्ष. च. १८.८

४३९ रौद्रार्तप्रवणा जीवा यान्ति नरकावनिम् । प. पु. १०५.११६

४४० योग: समाधि: । म. पु. ३८.१८९

४४१ योगो ध्यानं । म. पु. ३८.१७९

धैर्य

४४२ जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । प. पु. ४५.८४

४४३ श्लाघ्यं धैर्यं हि मानिनाम् । म. पु. १८.१३६

निन्दा प्रशंसा

४४४ मुच्यन्ते देहिन: पापैरात्मनिन्दा विगर्हणै: । प. पु. २६.६४

— इस संसार में धर्म के सिवाय अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है।

— धर्म से ही आपत्तियों का प्रतिकार होता है।

— धर्म ही अविनाशी निधि है।

— धन, ऋद्धि, सुख और सम्पत्ति इन सबका मूल कारण धर्म ही है।

— धर्म कामधेनु है।

— धर्म महान् चिन्तामणि है।

— धर्मात्मा पुरुष ही दूसरों को दण्डित करने में समर्थ है।

— धर्मात्मा मर्यादा की हानि सहन नहीं करते।

— धर्मात्माओं की चेष्टाएं प्रायः कल्याण के लिए ही होती हैं।

— अधर्म से सुख नहीं मिलता।

— अधर्म से नीच गति मिलती है।

— आत्मध्यान से बढ़कर कोई दूसरा ध्यान नहीं है।

— रौद्र तथा आर्तध्यान से जीव नरक में जाते हैं।

— योग ही समाधि है।

— योग ही ध्यान है।

— धीर मनुष्य जीवित रहे तो बहुत समय बाद भी कल्याण को पा लेता है।

— ज्ञानियों का धैर्य प्रशंसनीय है।

— अपनी निन्दा, गर्हा करने से लोग पापों से मुक्त हो जाते हैं।

४४५ निवेदयन् गुणांस्तावल्लोकैऽसं याति लाघवम् । प. पु ४४.६६

४४६ आत्मस्तवोऽन्यनिन्दा च मरणाच्च विशिष्यते । म. पु. ७५.५११

४४७ न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्प्राप्नोति गौरवम् । प. पु ७३.७४

निमित्त

४४८ नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः । प. पु. ६०.६८

४४९ निमित्तमात्रमन्येषामसुखस्य सुखस्य वा । प. पु. ८.२४८

४५० समर्थे कारणे नूनं सतां शीलं व्यवस्थितम् । पा. पु. २५.१२४

४५१ कारणानुगुणं कार्यम् । म. पु ५४.११०

४५२ हेतुसमं फलम् । प. पु. ७.२०२

४५३ काललब्ध्यात्र किं न जायते दुर्घटम् । व. च. ४.५३

निर्भीकता

४५४ आयुधैः किमभीतानाम् ? प पु. १०५.१८३

निवृत्ति

४५५ पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् । प. पु. ४६.५७

४५६ निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् । प. पु. ४६.५६

निश्चय

४५७ निश्चयात् किं न लभ्यते ? प. पु. ७.३१५

नीति

४५८ कालप्राप्तं नयं सन्तो युञ्जाना यान्ति तुंगताम् । प. पु. ६.२५

४५९ कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः । प. पु. ५३.८५

— लोक में अपने गुणों का बखान करनेवाला मनुष्य भी लघुता को प्राप्त होता है ।

— अपनी प्रशंसा तथा दूसरे की निन्दा करना मरण के समान है ।

— कोई भी पुरुष अपनी प्रशंसा करता हुआ गौरव को प्राप्त नहीं होता ।

— नख से छेद्य तृण के लिए परशु का प्रयोग उचित नहीं है ।

— दूसरे लोग सुख अथवा दुःख के निमित्त मात्र हैं ।

— समर्थ कारण मिलने पर ही सज्जनों का स्वभाव व्यवस्थित होता है ।

— कारण के अनुसार ही कार्य होता है ।

— कारण के समान ही उसका परिणाम होता है ।

— काल-लब्धि से यहां कोई भी दुर्घट घटना घटित हो सकती है ।

— निर्भीक लोगों को आयुधों से कोई प्रयोजन नहीं है ।

— पाप से थोड़ी सी निवृत्ति भी संसार से पार होने का कारण है ।

— निवृत्ति अकेली भी महाफलदायी होती है ।

— निश्चय से सब कुछ मिलता है ।

— समयानुकूल नीति का प्रयोग करनेवाले उन्नति को प्राप्त होते हैं ।

— संसार में नीतिज्ञ पुरुष सभी प्रकार से कार्यसिद्धि चाहते हैं ।

न्याय/अन्याय

४६० न्यायानुवर्तिनां युक्तं न हि स्नेहानुवर्तनम् । म. पु. ६७.१००

४६१ अन्यायो हि पराभूतिर्न तत्त्यागो महीयसः । म. पु. ४४.२५२

४६२ न्यायो दयार्द्रवृत्तित्वम् अन्यायः प्राणिमारणम् । म. पु. ३९.१४१

पराक्रम

४६३ न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च । प. पु. ३०.७२

४६४ धैर्यमक्षतकायानां शूराणां न हि वर्धते । प. पु. ८.२३३

४६५ नरेश्वरा ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु । प. पु. ६६.१०

४६६ न विषादोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि । प. पु. ४६.४०

४६७ रणे पृष्ठं न दीयते । प. पु. १०३.२२

४६८ कृत्ये कृच्छ्रेऽपि सत्त्वाढ्या न त्यजन्ति समुद्यमम् । म. पु. ५९.१६५

४६९ वीराणां शत्रुभंगेन कृतस्वं न धनादिना । प. पु. ८.२४२

४७० वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानतिः । प. पु. १२.१७७

४७१ वीरभोग्या वसुन्धरा । प. पु. १०१.३३

४७२ किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीतकाः ? प. पु. ९७.३६

४७३ प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूयो निवर्तते ? प. पु. ७.५०

परिग्रह/भोग

४७४ कथं चेतोविशुद्धिः स्यात् परिग्रहवतां सताम् ? प. पु. २.१८९

— न्याय के अनुसार चलनेवाले पुरुषों को स्नेह का अनुवर्तन करना उचित नहीं है।

— अन्याय करना ही महापुरुषों का पराभव है, अन्याय का त्याग नहीं।

— दया से कोमल परिणाम होना न्याय है और प्राणियों का मारना अन्याय है।

— शूरवीर और बुद्धिमान् को विषाद कभी नहीं होता।

— जिनके शरीर में घाव नहीं लगते ऐसे शूरवीरों का पराक्रम बढ़ता नहीं।

— बलिष्ठ और शूरवीर शासक कभी भी भयभीत पर प्रहार नहीं करते।

— शूरवीर बड़ी-बड़ी विपत्तियों में भी विषाद नहीं करते।

— युद्ध में पीठ नहीं दिखाई जाती।

— बलशाली कठिन कार्य में भी उद्यम नहीं छोड़ते।

— वीर मनुष्यों का कृतकृत्यपना शत्रुओं के पराजय से ही होता है, धनादि की प्राप्ति से नहीं।

— प्राणों का परित्याग अच्छा किन्तु शत्रु के आगे झुकना अच्छा नहीं।

— पृथ्वी वीर भोग्या है।

— उस पराक्रम से कोई लाभ नहीं जिससे कि भयभीत प्राणियों की रक्षा नहीं होती।

— पराक्रमधारी पुरुष प्रस्थान करने के पश्चात् फिर वापस नहीं लौटते।

— परिग्रही मनुष्यों के चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती।

४७५ भोगसंवर्तनं येन कर्मणा नावमुच्यसे । प. पु. १०६.१९३

४७६ भोगाः क्षणविनश्वराः । प. पु. ६.७६

४७७ नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः । प. पु. ५.२३४

४७८ [illegible] भोगेषु [illegible] । प. पु. १६.८०

४७९ स्वप्नभोगोपमा भोगाः । प. पु. २१.११५

४८० भोगेष्वत्युत्सुकः प्रायो न च वेद हिताहितम् । म. पु. ३६.८५

४८१ भोगिवच्चञ्चला भोगाः । पा. पु. २३.२५

४८२ किंपाकफलवद् भोगा विपाकविरसा भृशम् । प. पु. ७६.१३

४८३ त्यागो भोगाय धर्मस्य कायायेव महात्मनो । म. पु. ५६.२६६

४८४ भोगिनो भोगवद् भोगाः । म. पु. ४६.१६८

४८५ आपातमात्ररम्याश्च भोगा पर्यन्ततापिनः । म. पु. ८.५४

४८६ राज्यं रजोनिभं प्राज्यं । पा. पु. १०.७

४८७ विषयैर्भुज्यमानैर्हि न तृप्तिं यान्ति देहिनः । पा. पु. ६.४७

४८८ भुज्यमानाः सुखायन्ते विषया दुःखदायिनः । ह. पु. ६.४८

४८९ सुखत्यागाद्धि निर्वाणः । व. च. ५.१४३

४९० सुखं वैषयिकं कटु । क्ष. च. ५.१०१

४९१ विद्युल्लोला विभूतयः । म. पु. ४७.२६६

४९२ भोगिभोगसमा भोगास्तापोपचयकारिणः । प. पु. २६.७५

४९३ दुःखमेतद्धि मूढानां सुखत्वेनावभासते । प. पु. २६.७६

४९४ आपातरमणीयानि सुखानि विषयावधः । प. पु. २६.७७

— भोगों में आसक्ति के कारण मनुष्य कर्म से नहीं छूटता ।

— भोग क्षणभंगुर हैं ।

— भोग नाग के फण के समान भयंकर एवं नरक में गिरानेवाले हैं ।

— धोखा देनेवाले भोगों से किसी लाभ की आशा नहीं ।

— भोग स्वप्नभोग के समान हैं ।

— भोगों के प्रति उत्सुक मनुष्य प्रायः हिताहित नहीं जानते ।

— भोग सर्प के शरीर के समान चञ्चल हैं ।

— भोग किंपाकफल के समान परिपाककाल में अत्यन्त विरस होते हैं ।

— भोग के लिए धर्म का त्याग काच के लिए महामणि के त्याग के समान है ।

— भोग सर्पफण के समान हैं ।

— भोग भोगकाल में सुखकर प्रतीत होते हैं परन्तु अन्त में सन्तापकारी हैं ।

— समृद्ध राज्य भी धूल के समान है ।

— भोगे जाने पर भी विषयों से प्राणियों को तृप्ति नहीं होती ।

— दुःखदायी विषय भोगकाल में मनुष्यों को सुखदायी लगते हैं ।

— सांसारिक सुखों के त्याग से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है ।

— विषय सुख कड़वे होते हैं ।

— विभूतियां बिजली के समान चंचल होती हैं ।

— भोग सर्प के फण के समान ताप को ही बढ़ानेवाले होते हैं ।

— मूर्ख प्राणियों को दुःख भी सुखरूप जान पड़ता है ।

— विषयादि सुख भोगकाल में ही रमणीय होते हैं ।

४९५ विषया विषदारुणाः । म. पु. ११.१७४

४९६ नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् । प. पु. ८.७३

४९७ रिपवश्च उग्रतरा विषयाः । प. पु. ८.४३१

४९८ विषया विषसंपृक्ताः । म. पु. ४.१४९

४९९ दुष्करो विषयत्यागः कौमारे महतामपि । म. पु. ६६.४४

५०० विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बंधं समश्नुते । प. पु. १०५.२४७

५०१ असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् । प. पु. १०५.१८०

५०२ शर्कराप्यलमास्वादान्मावदासिर सान्तरम् । ह. पु. २२.१६

५०३ ग्रहा इव गृहाः पुंसां विकाराकरकारिणः । पा. पु. २३.११

५०४ शिथिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् । प. पु. ७६.१२

५०५ विषयस्तोव दृष्टा पूर्वैर्नू पद्य ुतिः । प. पु. ६.२००

५०६ राज्यं रजोनिभं नूनं सर्वपापनिबन्धनम् । व. च. ५.१००

५०७ हिरण्यदानतः कोऽत्र न लुभ्यति महीतले ? पा. पु. १४.१५८

५०८ स्वप्नप्रतिममैश्वर्यम् । प. पु. ३९.११४

५०९ इन्दिरा सुन्दरी नैव मन्दिरं दुष्टकर्मणः । पा. पु. १२.१४०

५१० रमार्थं मारणं पुंसां सा रमा विरमा मता । पा. पु. १२.१२२

५११ श्रियो माया । म. पु. ५८.९

५१२ स्वयं गृहागतां लक्ष्मीं हन्यात्पादेन को विधीः ? म. पु. ६८.२३५

५१३ लक्ष्मीस्तडिल्लोला । म. पु. ८.५३

५१४ लक्ष्मीरतिचला । म. पु. ४.१५०

— विषय विष के समान दुःखदायी होते हैं।

— विषय सात्त्विक लोगों को भी प्रायः अपने वश में कर लेते हैं।

— विषय प्रबलतम शत्रु होते हैं।

— विषय विषपूर्ण होते हैं।

— कुमारावस्था में विषयों का त्याग करना महापुरुषों के लिए भी कठिन है।

— विषयरूपी मांस में आसक्त मत्स्य (मछली) बंध को प्राप्त होता है (विषयासक्त जीव बंध को प्राप्त होता है।)

— विषयजन्य सुख खड्गधारा पर लगे हुए मधु के स्वाद के समान है।

— शक्कर अधिक खाने पर भी दूसरा स्वाद नहीं देती।

— क्रूर (शनि आदि) ग्रहों के समान विकार उत्पन्न करनेवाले हैं।

— कुलटा के समान चेष्टाकारिणी इस राजलक्ष्मी को धिक्कार है।

— पूर्व पुरुषों ने राजलक्ष्मी को विषबेल के समान देखा है।

— राज्य निश्चय से धूलि के समान है और समस्त पापों का कारण है।

— सोने का दान पाकर सब सन्तुष्ट होते हैं।

— ऐश्वर्य स्वप्न के समान होता है।

— लक्ष्मी सुन्दर नहीं है, वह तो दुष्टकार्यों का घर है।

— जिस लक्ष्मी के लिए मनुष्यों की हत्या की जाती है वह स्थायी नहीं है।

— लक्ष्मी मायारूप है।

— स्वयं घर आयी लक्ष्मी को कोई भी बुद्धिमान् पैर से नहीं ठुकराता।

— लक्ष्मी बिजली के समान चञ्चल है।

— लक्ष्मी अत्यन्त चञ्चल है।

५१५ न हि भूलीनामेकस्मिन् सर्वदा रतिः। प. पु. ६.४८६

५१६ कपिभ्रू भंगुरा लक्ष्मीः। प. पु. ३२.६२

५१७ मीतिविक्रमयोर्लक्ष्मीः। म. पु. ६२.४४

५१८ धर्मं दुःखानुबन्धनम्। म. पु. ४.१४६

५१९ अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः। प. पु. ३५.१६२

५२० सदा सनिधनं धनम्। म. पु. ८.७७

५२१ न पश्यन्त्यर्थिनः पापं वंचनासंचितं महत्। म. पु. ६७.२३८

५२२ स्वापतेयमपिस्वापसदृशं सारवर्जितम्। पा. पु. १२.१२१

५२३ धनं किं न करोति वै ? पा. पु. ४.२०२

५२४ अर्थात् समीहितं सुखम्। व. च. ५.१४३

५२५ वेश्येव श्रीर्बुधैर्निन्द्या। व. च. ५.१०१

५२६ संभोगः संविभागश्च फलमर्थार्जने द्वयम्। म. पु. ३७.१८

५२७ स्वप्नाद्विशेषीया विनश्वर्यो धनर्द्धयः। म. पु. ८.६८

५२८ विपदन्ताश्च सम्पदः। म. पु. ८.७७

५२९ संपदो विपदोऽङ्गिनाम्। म. पु. ६३.२२८

५३० सम्पदो जलकल्लोलविलोलाः सर्वमध्रुवम्। म. पु. ४.१५०

परिणाम/भाव

१३५ दुर्बुद्धिकामनाम्मरणं वरम्। प. पु १०६.१५१

५३२ सुलेश्यानां प्रायेण हि गुणाः प्रियाः। म. पु. ७४.२८६

५३३ चित्रा हि परिणामवशाद् गतिः। ह. पु. १८.१२४

— सम्पदाओं की सदा एक ही व्यक्ति में रति नहीं रहती ।

— लक्ष्मी बादर की भौंह के समान चञ्चल है ।

— लक्ष्मी नीति और पराक्रम से उपलब्ध होती है ।

— धन दु:ख को बढ़ानेवाला है ।

— धनहीन मनुष्य का न कोई मित्र होता है और न कोई भाई ।

— धन सदा ही विनाशशील है ।

— धनाभिलाषी दूसरों को ठगने से उत्पन्न महान् पाप की परवाह नहीं करते ।

— धन भी स्वप्न के समान सारहीन है ।

— धन सब कुछ कर सकता है ।

— अर्थ से मनोवाञ्छित सुख मिलता है ।

— लक्ष्मी वेश्या के समान ज्ञानियों द्वारा निन्द्य है ।

— स्वयं उपयोग करना और दूसरों को दान देना अर्थार्जन के ये दो ही मुख्य फल हैं ।

— धन-धान्यादि विभूतियां स्वप्न में प्राप्त विभूतियों के सदृश नाशवान् हैं ।

— सम्पत्तियों का परिणाम विपत्ति होता है ।

— सम्पदाएं प्राणियों के लिए विपत्तिरूप हैं ।

— सम्पदाएं जल की लहरों के समान क्षणभंगुर और अस्थिर हैं ।

— दुर्भावना रखने से मर जाना अच्छा है ।

— शुभलेश्याधारियों को प्राय: गुण ही प्रिय होते हैं ।

— परिणामों (भावों) के अनुसार चित्र-विचित्र गतियां होती हैं ।

५३४ मोक्षसाधनतः सारं मानुष्यं दुर्लभं च तत् । ह. पु. १८.६४

५३५ भवावर्ते जन्तुः किं किं न जायते ? म. पु. ४६.३०

५३६ मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा । प. पु. ८५.१०६

५३७ लभ्यं दुःखेन मानुष्यम् । प. पु. ८३.४७

५३८ भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः । प. पु. ११०.४६

पुद्गल

५३९ विचित्रा पुद्गलस्थितिः । म. पु. ३३.६२

पुण्य/पाप

५४० प्रायः प्राक्कृतपुण्येन संनिधित्सन्ति देवताः । म. पु. ७५.२०६

५४१ शक्तयो देवतानां च निःसाराः पुण्यवर्जने । म. पु. ७०.४२६

५४२ इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः । प. पु. ३६.७६

५४३ पुण्यसंपूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ? प. पु. ११.३७१

५४४ पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं प्रजायते । प. पु. ६०.६०

५४५ पुण्यवतां प्रायः प्रयोगाच्छान्तता भवेत् । पा. पु. १५.१०४

५४६ सर्वत्र विजयः पुण्यवतां । म. पु. ७५.६५४

५४७ न विनाभ्युदयः पुण्याद् अस्ति कश्चन पुष्कलः । म. पु. १५.२२१

५४८ सति पुण्ये न कः सखा ? म. पु. ७१.२१

५४९ सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ? म. पु. ७.३२२

५५० पुण्ये प्रसेदुषि नृणां किमिवास्त्यलङ्घ्यम् ? म. पु. २८.२१३

— मोक्ष का साधन होने से मनुष्य पर्याय ही सार है और वह अत्यन्त दुर्लभ है।

— संसार चक्र में जीव सब कुछ बनता है।

— प्राणी बड़ी कठिनाई से मनुष्य-भव पाता है।

— मनुष्य पर्याय कठिनता से प्राप्त होती है।

— सभी भवों में मनुष्य-भव दुर्लभ है।

— पुद्गल का स्वभाव विचित्र होता है।

— पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से देवता भी समीप आ जाते हैं।

— देवों की शक्तियां भी पुण्यात्माओं के सामने निःसार हो जाती हैं।

— पुण्यात्मा जीवों को इष्ट वस्तु मुहूर्तमात्र में प्राप्त हो जाती हैं।

— पुण्यात्मा जीवों के सौभाग्य के विषय में कोई नहीं कह सकता।

— पुण्यात्मा जीवों के किसी कार्य में अन्तर नहीं पड़ता।

— पुण्यवानों के संयोग से प्रायः शान्ति मिलती है।

— पुण्यात्माओं की सर्वत्र विजय होती है।

— पुण्य के बिना किसी भी बड़े अभ्युदय की प्राप्ति नहीं होती।

— पुण्य के रहते सब मित्र हो जाते हैं।

— पुण्य के बिना सिद्धि संभव नहीं।

— पुण्य के प्रसाद से मनुष्यों को सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

५५१ पुण्ये बलीयसि किमस्ति जगत्यजय्यम् । म. पु. ६८.२६४

५५२ पुण्यात् परं न खलु साधनमिष्टसिद्ध्यै । म. पु. २८.२१५

५५३ दरिद्रति जने धनदायि पुण्यम् । म. पु. २८.२१८

५५४ पुण्यं सुखार्थिनि जने सुखदायि रत्नं । म. पु. २८.२१९

५५५ पुण्यातपत्रविश्लेषे तच्छाया क्वावतिष्ठताम् ? म. पु. ६.४

५५६ पुण्यात्तीर्थकरश्रियं । म. पु. ३०.१२९

५५७ पुण्यात् सुखं न सुखमस्ति विनेह पुण्यात् । म. पु. १६.२७१

५५८ अयः पुण्यादृते कुतः ? म. पु. ३१.१४५

५५९ पुण्यैः किं नु न लभ्यते ? म. पु. ६.१९५

५६० पुण्यं कारणं प्राहुः बुधाः स्वर्गापवर्गयोः । म. पु. ६.२१

५६१ पुण्यैः किन्नु दुरासदम् ? म. पु. ९.१८७

५६२ किं न स्यात् सुकृतोदयात् ? म. पु. ५९.९७

५६३ पुण्यं पुण्यानुबन्धि यत् । म. पु. ५४.९९

५६४ देवाः खलु सहायत्वं यान्ति पुण्यवतां नृणाम् । म. पु. ७४.४७८

५६५ प्राक्कृतपुण्यानां स्वयं सन्ति महर्द्धयः । म. पु. ७०.३०४

५६६ न साधयन्ति केऽभीष्टं पुंसां शुभविपाकतः ? म. पु. ४१.२१३

५६७ सर्वत्र पूर्वपुण्यानां विजयो नैव दुर्लभः । म. पु. ७२.१७५

५६८ सम्पत्सम्पन्नपुण्यानाम् अनुबध्नाति सम्पदम् । म. पु. ४५.१३७

५६९ दुर्विधाः सधनाः पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गश्च लभ्यते । म. पु. ७५.१५७

५७० पुण्यानि फलन्ति विपुलं फलम् । म. पु. ७५.६३

५७१ पुण्यात्स्वर्गो सुखं परम् । म. पु. ७४.३६३

— पुण्य के बलवान् होने पर जगत् में कुछ भी अजेय नहीं होता।

— इष्टसिद्धि के लिए पुण्य से बढ़कर और कोई अन्य साधन नहीं है।

— पुण्य ही दरिद्र मनुष्यों को धन देनेवाला है।

— सुखार्थियों के लिए पुण्य सुखदायी रत्न है।

— पुण्यरूपी वृक्ष का अभाव होने पर उसकी छाया भी नहीं रह सकती।

— पुण्य से ही तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।

— सुख पुण्य से ही प्राप्त होता है, बिना पुण्य के सुख नहीं मिलता।

— पुण्य के बिना जय नहीं होती।

— पुण्य से सब कुछ प्राप्त होता है।

— बुद्धिमानों ने पुण्य को स्वर्ग और मोक्ष का कारण कहा है।

— पुण्य से कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

— पुण्योदय से सब कुछ हो सकता है।

— पुण्य वही है जो पुण्य का बंध करे।

— देवता भी पुण्यात्माओं की ही सहायता करते हैं।

— पूर्व में पुण्य करनेवालों को बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ स्वयं मिल जाती हैं।

— पुण्योदय से पुरुषों के सब कार्य सिद्ध होते हैं।

— पूर्वोपार्जित पुण्य से सर्वत्र विजय पाना कठिन नहीं है।

— पुण्यशाली पुरुषों की सम्पत्ति सम्पत्ति को बढ़ाती है।

— पुण्य से निर्धन धनी हो जाते हैं, पुण्य से स्वर्ग भी प्राप्त हो जाता है।

— पुण्य से विपुल फलों की प्राप्ति होती है।

— पुण्य से स्वर्ग में परमसुख की प्राप्ति होती है।

५७२ जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसंगमाः । प. पु. ३६.८१

५७३ प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते सुरा अपि । प. पु. १७.८३

५७४ जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते । प. पु. ५६.२६

५७५ पुण्योदयात्पुंसां सुलभं किं न जायते ? व. च. ३.९५

५७६ पुण्योदयेन जायन्ते पुण्यभाजां सुखाकराः । व. च. १७.४१

५७७ सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति । प. पु. १२३.१७९

५७८ एको विजयते शत्रुं पुण्येन परिपालितः । प. पु. ७४.५८

५७९ क्षीणे स्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् । प. पु. ७२.८९

५८० सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा । प. पु. ८५.११२

५८१ पुण्येन स्वेन रक्ष्यते । प. पु. ६६.८७

५८२ पुण्योपार्जितसत्कर्मप्रभावात् परमोदयम् । प. पु. १२.२४

५८३ पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता । प. पु. ३१.७६

५८४ सुकृतं विनयः श्रुतं च शीलं सदयं वाक्यममत्सरं शमश्च । प. पु. १२३.१७७

५८५ पुण्यात्सर्वं सुखाय वै । पा. पु. १६.२४२

५८६ पुण्यानामेव सामर्थ्यमपायपरिरक्षणे । ह. पु. ४३.२२३

५८७ पुण्यस्य किमु दुष्करम् । ह. पु. ४९.१६

५८८ पुण्यतः किं दुराप्यं स्यात् ? पा. पु. ८.१२०

५८९ तत्किं न लभते पुण्यात् यल्लोके हि दुरासदम् ? पा. पु. ८.१८४

५९० पुण्याद्विश्वं याति वश्यं जने । पा. पु. १०.२८

— पुण्यशालियों को ही इष्ट-समागम प्राप्त होते हैं।

— पुण्य का अन्त होने पर देव भी परम दुःख प्राप्त करते हैं।

— पुण्यरहित प्राणी की रक्षा नहीं होती।

— पुण्योदय से मनुष्यों को सभी दुर्लभ वस्तुएं मिल जाती हैं।

— पुण्योदय से पुण्यात्माओं को सुख के भण्डार मिलते हैं।

— पुण्य के फल से यह जीव उच्चपद को प्राप्त करता है।

— पुण्य के प्रभाव से पुरुष अकेला ही शत्रु को जीत लेता है।

— पुण्यक्षीण होने पर इन्द्र भी च्युत हो जाता है।

— मनुष्य की पुण्यासक्ति ही एकमात्र प्रशंसनीय एवं मुक्तिसुख की दायिनी है।

— अपना पुण्य ही रक्षा करता है।

— पुण्योपार्जित सत्कर्म के प्रभाव से परमोदय होता है।

— पुण्य से सुख और पाप से दुःख प्राप्त होता है।

— विनय, श्रुत, शील, दयासहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत (पुण्य) हैं।

— पुण्य से सब प्रकार के सुख मिलते हैं।

— विपत्ति में पुण्य ही रक्षा करने में समर्थ है।

— पुण्य के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।

— पुण्य से कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

— इस लोक में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है जो पुण्य से प्राप्त नहीं होती।

— पुण्य से लोगों को विद्या शीघ्र प्राप्त होती है।

५९१ पुण्यात्जयो भवेत् । पा. पु. ३.१६८

५९२ गरीयः सुकृतं यस्य किं तस्य स्याद्दुरासदम् । पा. पु. ८.९६

५९३ पुण्यात् किं दुर्लभं भुवि ? पा. पु. ११.३०

५९४ प्रक्षीणपुण्यानां विनश्यति विचारणम् । म. पु. ६५.१६४

५९५ एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् । प. पु. ३९.१४३

५९६ रत्नाकरेऽपि सद्रत्नं नाप्नोत्यकृतपुण्यकः । म. पु. ७६.२१९

५९७ गते पुण्ये कस्य किं कोऽत्र नाहरत् । म. पु. ५८.७३

५९८ अशुभात् किं न जायते । व. च. २.२१

५९९ विचित्रो दुरितोदयः । म. पु. ४७.२१०

६०० अत्रामुत्र च पापस्य परिपाको दुरुत्तरः । म. पु. ४६.२८३

६०१ कारुण्यं पापिनः कुतः ? ह. पु. ६१.७५

६०२ अकार्यं न पापिनाम् । म. पु. ७५.५३७

६०३ पापिनो हि स्वपापेन प्राप्नुवन्ति पराभवम् । म. पु. ७२.१२६

६०४ विचारविकलाः पापाः कोपिताः किं न कुर्वते । म. पु. ७०.३६८

६०५ पापात्किं न जायते ? पा. पु. ३.२४६

६०६ पापात् किं जायते शुभम् ? पा. पु. ४.२२०

६०७ पातकात् पतनं ध्रुवम् । ह. पु. १७.१५१

६०८ स्वल्पमप्यर्जितं पापं करोत्युपचयं परम् । प. पु. २६.१२६

६०९ कुपुण्यभाजां तु चिरं सुखमता विनाशकाले परतां भजन्ते । प. पु. ५५.९४

६१० कुकृतं प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वचश्च रूक्षम् । प. पु. १२३.१७७

— पुण्य से जय होती है।

— जिसका पुण्य विशाल हो उसको सब वस्तुएं सुलभ होती हैं।

— संसार में पुण्य से सब कुछ मिलता है।

— पुण्य क्षीण हो जाने पर विचारशक्ति नष्ट हो जाती है।

— सुख का एकमात्र कारण पुण्य है, वही करना चाहिये।

— पुण्यहीन मनुष्य को समुद्र में भी उत्तम रत्न प्राप्त नहीं होता।

— पुण्य क्षय होने पर हर कोई उसकी किसी भी वस्तु को हर लेता है।

— अशुभकर्म के उदय से कुछ भी हो सकता है।

— पाप का उदय विचित्र होता है।

— पाप का फल इस लोक तथा परलोक दोनों में ही बुरा होता है।

— पापी के दया नहीं होती।

— पापियों के लिए कोई भी कार्य अकरणीय नहीं है।

— पापी लोग अपने पाप से पराभव पाते हैं।

— विचाररहित पापी कुपित किये जाने पर सब कुछ कर डालते हैं।

— पाप के उदय होने पर सब कुछ हो सकता है।

— पाप से शुभ की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

— पाप से पतन निश्चित है।

— संचित किया हुआ थोड़ा सा पाप भी परमवृद्धि को प्राप्त होता है।

— पुण्यहीन मनुष्यों के विनाश के समय अपने समर्थ साथी भी पराये हो जाते हैं।

— अत्यधिक क्रोध, परपीड़ा में प्रीति और रूखे वचन कुकृत/पाप हैं।

६११ यस्मान्न दृश्यते लोके दुःखं तत्पापसंभवम् । प. पु. १७.१८७

६१२ पापक्रियारम्भे सुलभाः साम्वायिकाः । म. पु. ४४.२१

६१३ महापापकृतो पापमस्मिन्नेव फलिष्यति । म. पु. ६८.२६७

६१४ कृतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । प. पु. ३६.१७३

६१५ संसारयन्ति कार्याणि सोपायं पापभीरवः । म. पु. ७५.५०७

प्रत्यक्ष

६१६ आदर्शोऽर्पणीयः किं हस्तः कङ्कणलोकने ? पा. पु. ३.५७

६१७ न दर्पणोऽर्पणीयः किं करकंकणदर्शने । म. पु. ४३.३११

प्रमाद

६१८ कालस्योत्क्षेपको मुग्धः दीर्घसूत्री विनश्यति । ह. पु. ५२.७७

६१९ स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् । म. पु. ५८.१२६

प्रिय

६२० प्रेयसां विप्रयोगो हि मनस्तापाय कल्प्यते । म. पु. ९.१५८

६२१ प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः । प. पु. ६६.२४

६२२ स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे । प. पु. ८०.८२

बंध/मुक्ति

६२३ बंध संसारकारणम् । म. पु. ५८.३४

६२४ बन्धात् खेदो हि जायते । पा. पु. १७.१४१

६२५ बन्धो न हि सतां मुदे । म. पु. ३६.६७

६२६ कुटुम्बं बंधकारणम् । व. च. ५.३

— संसार में जो भी दुःख दिखाई देता है वह सब पाप का फल है।

— पाप कर्मों के आरम्भ में सहायक सुलभ हो जाते हैं।

— महापापियों का पाप इसी लोक में फल दे देता है।

— किसी भी पाप के उदय से यह प्राणी शीघ्र ही नरक में चला जाता है।

— पापभीरु योग्य उपाय से ही कार्यसिद्धि करते हैं।

— हाथ कंगन को आरसी क्या ?

— हाथ कंगन को आरसी (दर्पण) की आवश्यकता नहीं होती।

— समय की उपेक्षा करनेवाला दीर्घसूत्री मनुष्य नष्ट होता है।

— प्रमादी पुरुष अपनी आत्मा का स्वयं ही हनन करता है।

— प्रियजनों का विरह मन को संताप देनेवाला होता है।

— कार्य की सिद्धि प्रीति से ही होती है, युद्ध से तो केवल नरसंहार ही होता है।

— प्रियजन का समागम रहते हुए महावन भी स्वर्ग के समान जान पड़ता है।

— बंध संसार का कारण है।

— बंध से खेद होता ही है।

— बंध सज्जनों के लिए आनन्दकारी नहीं होता।

— कुटुम्ब बंध का कारण है।

६२७ विना संगपरित्यागात्कर्मारम्भाशा न प्रणश्यति । व. च. ५.७

६२८ मोहाद्यविषयेभ्योऽन्यन्नाहितं चाशुभाकरम् । व. च. ५.८

६२९ कर्मास्रवेण जीवानां संपातोऽत्र भवार्णवे । व. च. ५.८३

६३० बन्धको बन्धनोपमाः । व. च. ५.१००

६३१ निर्वाणान्नापरं किंचिच्छाश्वतं शर्म दृश्यते । व. च. ५.७

६३२ तपो रत्नत्रयेभ्योऽन्यद्धितं जातु न विद्यते । व. च. ५.८

६३३ संवरेण सतां नूनं मुक्तिश्रीर्जायतेतराम् । व. च. ५.८४

६३४ रत्नत्रयात्परो नान्यो मुक्तिमार्गो हि विद्यते । व. च. १८.६

६३५ संवरेण विना मुक्तिः कुतो मुक्तेर्विना सुखम् । व. च. १८.२१

६३६ प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् । प. पु. ६५.५५

भक्ति

६३७ इष्टं करोति भक्तिः सुदृढा सर्वज्ञभावगोचरनिरता । प. पु. १२३.१६४

६३८ जिनेन्द्रवन्दनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते । प. पु. ६.२०२

६३९ प्रारम्भाः सिद्धिमायान्ति पूज्यपूजापुरस्सराः । म. पु. ४२.२४३

६४० सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं हि रसनं स्मृतम् । प. पु. १.३०

६४१ प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् । प. पु. १.२४

६४२ श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ । प. पु. १.३१

६४३ भक्तिः श्रेयोऽनुबन्धिनी । म. पु. ७.२७१

भोजन

६४४ पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते । प. पु. ५३.१४१

— परिग्रहत्याग के बिना कभी भी आशा/तृष्णा नष्ट नहीं होती।

— मोह और इन्द्रिय-विषयों के सिवाय अन्य कोई अहित और अशुभ करनेवाला नहीं है।

— कर्मों के आस्रव से जीवों का संसार-सागर में पतन होता है।

— बन्धुजन बंधनों के समान हैं।

— मोक्ष के सिवाय और कोई शाश्वत सुख दिखाई नहीं देता।

— तप और रत्नत्रय के अतिरिक्त हितकारी (मुक्तिसाधक) अन्य कोई नहीं है।

— संवर के द्वारा ही सत्पुरुषों को मुक्तिश्री की प्राप्ति होती है।

— रत्नत्रय के सिवाय अन्य कोई दूसरा मुक्ति का मार्ग नहीं है।

— संवर के बिना मुक्ति नहीं हो सकती और मुक्ति के बिना सुख नहीं मिलता।

— जिससे निर्वाण (मोक्ष) मिलता है उससे अन्य कोई भी कार्य होना कठिन नहीं है।

— सर्वज्ञदेव की भावपूर्ण शुद्ध भक्ति इष्ट की पूर्ति करती है।

— जिनेन्द्रवन्दना के समान कोई और वस्तु कल्याणकारी नहीं है।

— पूज्य पुरुषों की पूजा से आरंभ किये हुए कार्य अवश्य ही सफल होते हैं।

— सत्पुरुषों के कीर्तनरूपी रस का कीर्तन करनेवाली रसना ही रसना है।

— महापुरुषों के कीर्तन से पाप दूर हो जाता है।

— श्रेष्ठ श्रेष्ठ वे ही हैं जो सत्पुरुषों का कीर्तन करने में लगे रहते हैं।

— भक्ति कल्याणकारिणी होती है।

— पुण्यवर्धक और आरोग्यदायक दिवाभोजन प्रशंसनीय है।

मन

६४५ चित्तचित्राश्रितसत्वलयः । ह. पु. २४.७४

६४६ चित्ताधर्मावगाहश्च जायतेऽत्यहितात्मनाम् । ग पु. २६.७

६४७ तत्सौहार्दं यदापत्सु सुहृद्भिरनुभूयते । म. पु. ७५.५७६

६४८ लोको दुर्ग्रहचित्तोऽयम् । प. पु. ७२.६५

६४९ चित्रा हि मनसो गतिः । प. पु. ४४.६५

६५० गुणोऽवध मनः कृत्यमिन्नक्षालेन को गुणः ? प. पु. २८.१६५

६५१ सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । प. पु. ३१.२३३

६५२ मनःशुद्धिरेवात्र सर्वाभीष्टप्रदा सताम् । व. च. १८.१६२

६५३ कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः । प. पु. ११.१३७

मध्यस्थ

६५४ मध्यस्थः को न सीदति ? पा. पु. ७.१७

६५५ मध्यस्थः कस्य न प्रियः ? म. पु. ५१.६२

६५६ तीव्रसंतापानां माध्यस्थ्यमपि तापकम् । म. पु. २७.१००

महापुरुष

६५७ नदीक्षोभात् किं क्षुभ्यति महार्णवः । पा. पु. १०.६०

६५८ न को वेत्ति महतां चरितं भुवि ? पा. पु. २.११३

६५९ दुर्जनैः खिद्यमानोऽपि महान्नो याति विक्रियाम् । पा. पु. १७.१२३

६६० महान् हि महतः सखा । पा. पु. ७.२७१

६६१ वर्द्धयन्ति महात्मानः पार्श्वस्थानपि द्विषः । म. पु. ६३.१३३

— चित्तवृत्तियां विचित्र होती हैं।

— विद्या और धर्म में रति (प्रवेश) स्थिरचित्तवालों को ही होती है।

— सौहार्द वही है जिसका अनुभव मित्रजन आपत्ति के समय करें।

— लोगों के चित्त को समझना कठिन है।

— मन की गति विचित्र होती है।

— गुणों में मन लगाना चाहिये, इन्द्रजाल से कोई लाभ नहीं है।

— सब शुद्धियों में मन की शुद्धि ही प्रशस्त है।

— सत्पुरुषों के मन की शुद्धि ही इस लोक में सभी पापिष्ठों को रोकनेवाली है।

— काम और क्रोध से अभिभूत लोगों का मन मोह में आक्रान्त हो जाता है।

— मध्यस्थ दुःखी होता ही है।

— मध्यस्थ सबको प्रिय होता है।

— तीव्र प्रतापियों की मध्यस्थता भी संतापकारी होती है।

— नदी के क्षोभ से क्या समुद्र क्षुब्ध नहीं होता।

— संसार में महापुरुषों के चरित्र को सब जानते हैं।

— दुर्जनों से सताये जाने पर भी महापुरुष विकार को प्राप्त नहीं होता।

— महापुरुषों के मित्र महापुरुष ही होते हैं।

— महापुरुष चरणों में पड़े शत्रुओं की भी वृद्धि करते हैं।

६६२ अनुवर्तनसाध्या हि महतां चित्तवृत्तयः । म. पु. ३४.८७

६६३ गणयन्ति महान्तः किं क्षुद्रोपद्रवमल्पकम् । म. पु. ४३.२८

६६४ महतां हि मनोवृत्तिः नोत्सेकपरिरम्भिणी । म. पु. ३७.१३

६६५ महाभये समुत्पन्ने महतोऽन्यो न तिष्ठति । म. पु. ७४.२९३

६६६ न महान् सहतेऽभिभूतिम् । म. पु. २८.१७६

६६७ किमसाध्यं महीयसाम् । म. पु. २६.७६

६६८ पौरस्त्यैः शोधितं मार्गं को वा नानुव्रजेज्जनः । म. पु. १.३१

६६९ महतां चेष्टितं चित्रं जगदभ्युद्दिधीर्षताम् । म. पु. १.१८६

६७० महतां चेष्टा परार्थैव निसर्गतः । म. पु. १.१८८

६७१ स्वनियोगानतिक्रान्तिः महतां भूषणं परम् । म. पु. ५.२७७

६७२ विमत्सराणि चेतांसि महतां परवृद्धिषु । म. पु. ३४.२२

६७३ अचिन्त्यं महतां धैर्यम् । म. पु. ३६.११४

६७४ महतां संश्रयान्नूनं यान्त्युच्चैर्मलिना अपि । म. पु. १७.२१०

६७५ महतां पुरुषाणां चरितं पापनाशनम् । प. पु. ३.२९

६७६ महामहाजनः प्रायो रतिवर्द्धिरतो भृशम् । प. पु. ११३.४२

६७७ महतां ननु शैलीयं यदापद्गततारणम् । प. पु. १७.३३४

६७८ महतां चेष्टितं चित्रम् । म. पु. २५.४७

६७९ कार्यं हि सिद्ध्यति महद्भिरधिष्ठितं यत् । म. पु. १९.१८४

— महापुरुषों की चित्तवृत्ति अनुकूलवृत्ति (अनुकूल आचरण) से ही ठीक हो जाती है।

— महापुरुष तुच्छ मनुष्यों के छोटे-छोटे उपद्रवों की परवाह नहीं करते।

— महापुरुषों की मनोवृत्ति अहंकार का स्पर्श नहीं करती।

— महाभय के सामने महापुरुष के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं ठहर सकता।

— महापुरुष दबाव नहीं सहते।

— महापुरुषों के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है।

— पूर्व पुरुषों के द्वारा शोधित मार्ग का लोग सरलतापूर्वक अनुगमन करते हैं।

— जगत् का उद्धार चाहनेवाले महापुरुषों की चेष्टाएं विचित्र होती हैं।

— महापुरुषों की चेष्टा स्वभाव से ही परोपकार के लिए होती है।

— अपने कर्तव्यों का उल्लंघन नहीं करना महापुरुषों का श्रेष्ठ भूषण है।

— महापुरुषों के हृदय दूसरों की उन्नति देखकर भी मात्सर्यरहित होते हैं।

— महापुरुषों का धैर्य अचिन्त्य होता है।

— महापुरुषों के आश्रय से मलिन पुरुष भी पूज्य बन जाते हैं।

— महापुरुषों का चरित्र पापनाशक होता है।

— उत्तमपुरुष रागियों से प्राय: अत्यन्त विरक्त होते हैं।

— आपत्ति में पड़े हुए का उद्धार करना महापुरुषों की शैली है।

— महापुरुषों की चेष्टाएं विचित्र होती हैं।

— महापुरुषों के द्वारा प्रारम्भ किया हुआ कार्य पूर्ण होता ही है।

मान/अपमान/विनय

६८० मानभङ्गभवाद्दुःखात्सावर शर्महानिकम् । पा. पु. १७.१४४

६८१ परिभवः सोढुम अशक्यो मानशालिनाम् । म. पु. २८.१३६

६८२ मानप्राणा हि मानिनः । म. पु. ४४.१८५

६८३ किं कुर्वन्ति न गर्विताः ? म. पु. ४८.११७

६८४ प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः । प. पु. १०१.६५

६८५ मानमुद्वहतः पुंसो जीवितं संसृतौ सुखम् । प. पु. ८.२४५

६८६ जायते प्राणिनां दुःखं परमंच तिरस्कृतेः । प. पु. १७.८६

६८७ अपमानाततो दुःखान्मरणं परमं सुखम् । प. पु. १०.६४

६८८ पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः । प. पु. ८१.७६

६८९ कुलजातानां विनयः सहजो मतः । ह. पु. ४३.१७

६९० न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते । प. पु. ३५.१७२

६९१ महतां पाद-संसेवी को वा नायतिमाप्नुयात् । म. पु. ५.१७६

माया

६९२ सद्भावप्रतिपन्नानां वंचने का विदग्धता ? म. पु. ५९.१६२

मित्र/मैत्री/शत्रु

६९३ तदेवोपकृतं पुंसां यत् सद्भावदर्शनम् । ह. पु. २१.३२

६९४ सहायभावो हि विपक्षयोगान्महाभयस्योपनिपातहेतुः । ह. पु. ३५.३

६९५ तिर्यञ्चोऽपि सुहृद्भावं पालयन्त्येव बन्धुषु । म. पु. ७३.१८

६९६ मैत्री सैव या स्वैकचित्तता । म. पु. ४६.४०

— मानभंग से उत्पन्न हुए दुःख के अतिरिक्त अन्य कोई दुःख सुख की हानि करनेवाला नहीं है।

— मानशाली अपना पराभव सहन नहीं कर सकते।

— मानी (स्वाभिमानी) मान को ही प्राण समझते हैं।

— अहंकारी लोग सब कुछ करते हैं।

— मानी मनुष्य प्रणाम मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं।

— मानी (स्वाभिमानी) का जीवन संसार में सुखी होता है।

— तिरस्कार से प्राणियों को परम दुःख होता है।

— अपमान से तथा तज्जन्य दुःख से तो मर जाना परम सुख है।

— संसार में वह मनुष्य पुण्यात्मा है जो माता के प्रति विनयी होता है।

— कुलीन मनुष्यों में विनय स्वभाव से ही होता है।

— जहां मनुष्य अपरिचित होता है वहां उसका आदर नहीं होता।

— बड़ों की चरणसेवा से बड़प्पन प्राप्त होता है।

— सरल परिणामी मनुष्य को ठगने में कोई चतुराई नहीं है।

— दूसरों के प्रति सद्भाव दिखाना ही मनुष्य का उपकार है।

— शत्रुओं की परस्पर मित्रता महान् भय का कारण होती है।

— तिर्यंच भी बन्धुजनों के साथ मैत्रीभाव का पालन करते हैं।

— एकचित्त हो जाना ही मित्रता है।

६९७ वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृद्वाक्यमौषधं यथा । प. पु. ७३.४८

६९८ विपक्षस्य हि सान्निध्यमक्षिसङ्क्षोभकारणम् । ह. पु. २२.१७

६९९ स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या कार्यविज्ञा न वैरिणि । ह. पु. ४६.२१२

७०० कालं प्राप्य कणो वह्नेर्दहेत् सकलविष्टपम् । प. पु. ८६.२१२

७०१ लब्धरन्ध्रा न तिष्ठेयुरकृत्वापकृतिं द्विषः । म. पु. ४८.६३

७०२ बलादुद्धरणीयो हि क्षोदीयानपि कण्टकः । म. पु. ३४.२५

७०३ सत्युपेक्ष्य लघीयानप्युच्छेद्यो [illegible] नृपाः । म. पु. १४.२३

७०४ नानुबन्धं त्यजत्यरिः । प. पु. ६.४८५

७०५ क्षुद्रो रेणुरिवाक्षिस्थो रुजत्यरिरुपेक्षितः । म. पु. ३४.२४

७०६ कर्मारिभ्योऽपरो वैरी नेहामुत्रातिदुःखदः । व. च. १८.१०

७०७ कर्षितो ह्यरिरुग्रोऽपि सुजयो विजिगीषुणा । म. पु. २०.२६०

मोह

७०८ मोहो हि चेतना हरेत् । पा. पु. १२.३४२

७०९ रागी दारिद्र्यदग्धोऽपि कुटीरं मोक्तुं क्षमः । व. च. १२.६५

७१० मोहिनां सकि यत्कुर्यं जगत्त्रये । ध. श. ३.२६

७११ कुर्वन्ति मोहान्धाः कर्मामुत्र नाशकम् । व. च. ३.२९

७१२ मोहेन जायेते रागद्वेषौ हि दुर्धरौ । प्र. च. १०.९५

७१३ मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादपि हीयते । प. पु. १२३.३४

७१४ मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते । प. पु. ३६.२०६

— मित्रों के अप्रिय वचन भी औषधि के समान ग्राह्य हैं।

— विरोधी की समीपता नेत्रसंकोच का कारण होती है।

— छोटा समझकर शत्रु की अवज्ञा नहीं करनी चाहिये।

— समय पाकर अग्नि का एक कण भी समस्त संसार को जला देता है।

— छिद्रान्वेषी शत्रु अपकार किये बिना नहीं रहते।

— कांटा चाहे छोटा ही हो बलपूर्वक निकालने योग्य है।

— शत्रु यदि छोटा हो तो भी वह उपेक्षणीय नहीं है।

— शत्रु अपने संस्कार का त्याग नहीं करता।

— उपेक्षित शत्रु चाहे वह छोटा ही हो आंख में पड़े हुए धूलिकण के समान पीड़ाकारक होता है।

— इस लोक और परलोक में कर्म व इन्द्रियों के विषयों के अतिरिक्त अतिदु:खदायी शत्रु और कोई नहीं है।

— बलवान् शत्रु भी दुर्बल हो जाने पर विजिगीषु द्वारा अनायास ही जीत लिया जाता है।

— मोह चेतना को हर ही लेता है।

— रागी जीव दरिद्र होते हुए भी अपनी कुटिया को नहीं छोड़ सकता।

— मोही जनों के लिए तीन लोक में कोई कार्य अकृत्य नहीं है।

— मोहान्ध मनुष्य इस लोक और परलोक में नाशकारी कर्म करते हैं।

— मोह से ही रागद्वेष दुर्धर हो जाते हैं।

— मोह के प्रभाव से जीव आत्महित से भ्रष्ट हो जाता है।

— मोह से कष्ट और पश्चात्ताप मिलते हैं।

७१५ विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः । प. पु. ११२.६४

७१६ संसार[illegible]स्खलितं स्यात् पदे पदे । प. पु. १०७.४५

यश/अपयश

७१७ यशो रक्ष्यं प्राणैरपि धनैरपि । म. पु. २८.१४०

७१८ स्थायुकं हि यशो लोके । म. पु. ३४.८६

७१९ प्राणैरपि यशः क्रेयं । म. पु. ६८.४८७

७२० अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता । प. पु. ९७.१६

यौवन/जरा

७२१ जरास्पदं हि यौवनम् । व. च. ११.५

७२२ संध्याप्रकाशसंकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् । प. पु. २६.७३

७२३ यौवनं फेनपुंजेन सदृशम् । प. पु. ८३.४७

७२४ यौवनं वनवल्लीकामिव पुष्पं परिक्षयि । म. पु. १७.१५

७२५ तारुण्यं कुसुमोपमम् । प. पु. २१.११९

७२६ तारुण्यसूर्योऽयमयमेवमेव प्रणश्यति प्राप्तजरोपरागः । प. पु. २१.१४८

७२७ प्रकृष्टवयसां पुंसां वीर्यस्येव परिक्षयम् । प. पु. १२.१७२

७२८ जराघातो नृणां कष्टो ज्वरः शीत इवोद्भवन् । म. पु. ३६.८६

राग/विराग/द्वेष

७२९ अस्थाने योजिता प्रीतिः जायतेऽनुशयायते । म. पु. ३५.१९८

७३० पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प. पु. २६.८

७३१ समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते । प. पु. ४७.९१

७३२ रागात् संजायते कामः । प. पु. ११.११६

— मोही लोग विषयजाल से बद्ध हो जाते हैं।

— संसार में आसक्त मनुष्य से पद-पद पर भूल होती है।

— प्राण और धन देकर भी यश की रक्षा करनी चाहिए।

— लोक में यश ही स्थिर रहनेवाला है।

— प्राण देकर भी यश खरीदने योग्य है।

— थोड़ी सी भी अपकीर्ति उपेक्षा करने पर बढ़ जाती है।

— यौवन वृद्धावस्था के मुख में होता है।

— यौवन संध्या-प्रकाश के समान चलायमान है।

— यौवन फेनसमूह के समान है।

— यौवन वनलता के पुष्पों के समान क्षय होनेवाला है।

— यौवन फूल के समान है।

— यौवनरूपी सूर्य भी जरारूपी ग्रहण का ग्रास हो जाता है।

— वृद्ध पुरुषों की बुद्धि क्षीण हो ही जाती है।

— बुढ़ापा मनुष्य को शीतज्वर के समान कष्टदायी है।

— अयोग्य स्थान में की गई प्रीति पश्चात्तापकारिणी होती है।

— पूर्वसंसर्ग से ही प्राणियों में प्रीति उत्पन्न होती है।

— प्राय: समानजनों में ही प्रेम होता है।

— राग से काम उत्पन्न होता है।

७३३ स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम्। प. पु. ११०.७२

७३४ रागवशं जन्तोः संसारपरिवर्तनम्। प. पु. ११.१४२

७३५ प्रोत्यप्रीतिसमुत्पन्नः संस्कारो जायते स्थिरः। म. पु. ४६.६१

७३६ रक्तस्य दोषोऽपि गुणवत् प्रतिभासते। म. पु. ४६.१४

७३७ रागी बध्नाति कर्माणि। म. पु. ५८.३४

७३८ अपवादो हि सह्येत रक्तेन न मनोव्यथा। ह. पु. १४.३६

७३९ योनि यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः। प. पु. ७७.६८

७४० सार्धमिणां हि वात्सल्यं परं स्नेहस्य कारणम्। पा. पु. १३.१५७

७४१ सदृशाः सदृशेष्वेव रज्यन्ति। प. पु. ११८.८८

७४२ सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि। प. पु. ४०.१७

७४३ निबद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते। प. पु. १०५.२५६

७४४ स्नेहं भवदुःखानां मूलम्। प. पु. ३२.८३

७४५ दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम्। प. पु. ३१.६५

७४६ सन्ध्यारागोपमः स्नेहः। प. पु. २१.११६

७४७ स्नेहस्य किमु दुष्करम्। प. पु. २६.४२

७४८ परिचितः प्रणयः खलु दुस्त्यजः। ह. पु. १५.४३

७४९ सर्वेषां बन्धानां तु स्नेहबन्धो महादृढः। प. पु. ११४.४६

७५० स्थास्नु नाशामवैराग्यम्। म. पु. ६५.८२

७५१ औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा। प. पु. ४५.८४

७५२ औदासीन्यं सुखं। म. पु. ५६.४२

— स्नेह-बंधन से आबद्ध मनुष्यों के लिए घर बन्दीगृह के समान है।

— प्राणियों का संसारपरिभ्रमण रागवश होता है।

— राग और द्वेष से उत्पन्न संस्कार स्थिर हो जाते हैं।

— रागी पुरुष के दोष भी गुण के समान जान पड़ते हैं।

— रागी जीव कर्मों को बांधता है।

— रागी मनुष्य अपकीर्ति को तो सह सकता है परन्तु मन की व्यथा को नहीं।

— प्राणी जिस योनि में जाता है उसी में रत हो जाता है।

— साधर्मियों का वात्सल्य निश्चय से स्नेह का परम कारण होता है।

— समान लोगों में ही अनुरक्ति होती है।

— पृथ्वी पर समान अवस्थावाले मनुष्य ही सद्भाव (पारस्परिक प्रीति-भाव) को प्राप्त होते हैं।

— स्नेहरूपी पाश से बंधा प्राणी कठिनता से छूट पाता है।

— सांसारिक दुखों का मूलकारण आसक्ति है।

— स्नेहबंधन दुश्छेद्य है।

— स्नेह सन्ध्या की लालिमा के समान है।

— स्नेह के लिए कोई कार्य दुष्कर नहीं है।

— परिचित स्नेह कठिनाई से ही छूटता है।

— सभी बंधनों में स्नेह का बंधन अधिक दृढ़ होता है।

— अज्ञानपूर्ण वैराग्य स्थिर नहीं रहता।

— उदासीनता बड़ी अनर्थकारिणी है।

— उदासीनता ही सुख है।

७५३ किं न जल्पन्ति वैरिणः ? पा. पु. १२.१४५

७५४ तृषार्त्तजन्तुविनाशनम् । प. पु. ११.१३६

रूप

७५५ मनोज्ञं प्रायशो रूपं चौरस्यापि मनोहरम् । प. पु. ६.१६७

७५६ राजते चारुभावानां सर्वमेव हि चारुता । प. पु. ४६.५

७५७ यद्यस्ति स्वगता शोभा किं किलालंकृतैः कृतम् । म. पु. १७.४१

७५८ सन्ध्यारागनिभा रूपशोभा । म. पु. १७.१४

लोक

७५९ अम्बुना सर्ववस्तुभ्यो वाञ्छ्यते दीर्घजीविता । प. पु. १७.३१४

७६० लोकोऽयं चित्रचेष्टितः । प. पु. ११.७९

७६१ लोको हि परमो गुरुः । प. पु. ४४.७१

७६२ लोकः सत्यमेव सर्वप्रियः । म. पु. १३.५४

७६३ को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् । प. पु. ९७.१२५

लोभ/शौच/सन्तोष

७६४ लोभो महान्पापः । पा. पु. १२.१३९

७६५ लोभात् किं न प्रजायते । पा. पु. १२.१३९

७६६ लोभी दुःखं प्राप्नोति दारुणम् । प. पु. ८३.५३

७६७ लुब्धो न लभते पुण्यम् । म. पु. ५४.१०८

७६८ प्रलम्भे न करोति किम् ? म. पु. ६२.४०

७६९ अर्थाचिभिरकर्त्तव्यं न लोके नाम किञ्चन । म. पु. ४६.५५

७७० नार्थिना स्थितिपालनम् । म. पु. ६२.३३६

— वैरी सब कुछ कह देते हैं।

— द्वेष से प्राणियों का विनाश होता है।

— सुन्दर रूप प्राय: धीरे-धीरे मनुष्य के भी मन को हर लेता है।

— सुन्दर भाववालों में सभी प्रकार से सुन्दरता रहती है।

— यदि स्वयं सुन्दर है तो उसे अलंकारों की आवश्यकता नहीं है।

— रूप की शोभा सन्ध्याकालीन लालिमा के समान है।

— प्राणी सब वस्तुओं से पहले दीर्घजीवन की कामना करता है।

— लोक विचित्रताओं से भिरा है।

— लोक ही परम गुरु है।

— वस्तुत: लोक नवीनताप्रिय होता है।

— संसार का मुख कोई बन्द नहीं कर सकता।

— लोभ महापाप है।

— लोभ से सब कुछ (अनर्थ) संभव है।

— लोभी दारुण दु:ख पाता है।

— लोभी को पुण्य की प्राप्ति नहीं होती।

— अलभ्य को पाने के लिए मनुष्य सब कुछ करता है।

— धनलोलुपी के लिए संसार में कुछ भी अकरणीय नहीं है।

— स्वार्थी मर्यादा का पालन नहीं करते।

७७१ मनोवचनकायानामकौटिल्यं विशुद्धता । पा. पु. १८.१८६

७७२ शुचिरलङ्घ्यतर: । म. पु. १९.१०५

७७३ मर्त्यलोके सुखं तद् यच्चित्तसन्तोषलक्षणम् । ह. पु. ११.६३

७७४ प्रभूते या धृति: सा किं क्वचिदन्यत्र लभ्यते । म. पु. १५.११

वचन/उक्ति/मौन

७७५ सतां हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभाषणम् । प. पु. ८.४९

७७६ परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नत: । प. पु. ५.३४१

७७७ प्रमाणभूय वाक्यस्य वक्तृप्रामाण्यतो भवेत् । म. पु. ६७.१८७

७७८ पश्चाद् विपरिपाकिभ्य: प्रागनालोचितोक्तिभ्य: । म. पु. ४६.५७

७७९ असत्यतो भवेन्नूनं किल्बिषं कर्मकारणम् । पा. पु. २०.२२६

७८० सद्वचो हितमन्ते स्यादातुरायेव भेषजम् । म. पु. ७४.५२०

७८१ मौनं सर्वार्थसाधनम् । ह. पु. ९.१२९

वस्तु/पदार्थ

७८२ कुलका हि विनश्वरा: । ह. पु. ६१.१८

७८३ किं न्वत्र न विनश्वरम् ? म. पु. १७.१३

७८४ गुणी गुणमयस्तस्य नाशस्तन्नाश इष्यते । म. पु. ५८.२६

७८५ व्याघ्रास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यसे । प. पु. ३५.७५

७८६ विनाशो हि स्वभावो वस्तुन: । पा. पु. ९.२११

७८७ कालहानिर्न कर्तव्या हस्तासन्नेऽतिदुर्लभे । म. पु. ६२.४४२

— मन-वचन-काय की सरलता ही विशुद्धता है।

— शुचि व्यक्ति (निर्लोभ व्यक्ति) अलंघ्य होता है।

— मनुष्यलोक में सुख वही है जो चित्त को सन्तुष्ट करनेवाला हो।

— अमृतपान से जो संतोष होता है, वह अन्यत्र संभव नहीं है।

— मधुर भाषण सत्पुरुषों की कुलविद्या है।

— दूसरे प्राणियों को पीड़ा देनेवाला वचन प्रयत्नपूर्वक वर्जनीय है।

— वचन की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता से होती है।

— पहले बिना विचारे कथन का फल बाद में विष के समान होता है।

— असत्य से पाप कर्म का बंध होता ही है।

— सज्जनों के वचन रोगी मनुष्य को औषधि के समान परिणाम में हितकारी होते हैं।

— मौन से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं।

— कृत्रिम वस्तुएं अवश्य ही नश्वर होती हैं।

— इस संसार में सब वस्तुएं विनश्वर हैं।

— गुणी गुणों से एकीभूत होता है अतः गुणी का नाश होने पर गुणों का भी नाश हो जाता है।

— हाथ से वडवानल में गया हुआ रत्न फिर नहीं मिल सकता।

— वस्तु का स्वभाव विनाशशील है।

— अतिदुर्लभ वस्तु यदि हाथ के निकट हो तो उसकी प्राप्ति में विलम्ब करना ठीक नहीं।

७८८ विचित्रा द्रव्यशक्तयः । म. पु. ७१.३४६

७८९ अत्र नाभंगुरं किञ्चिद् । म. पु. ६३.२६५

७९० अत्यल्पं बहुमौल्येन गृह्णतो न हि दुर्लभम् । म. पु. ५९.११५

७९१ नवं धृतिकरं नृणाम् । ह. पु. २१.३७

७९२ अभिसंधातु रतिर्महती नयेत् । ह. पु. ५५.३८

वर्ण/जाति

७९३ न जातिमात्राद् वैशिष्ट्यं । म. पु. ४२.१८८

७९४ न जातिर्गर्हिता काचित् । प. पु. ११.२०३

विद्वान्

७९५ पण्डिताः समदर्शिनः । प. पु. ११.२०४

७९६ प्रायः श्रेयोऽर्थिनो बुधाः । म. पु. ११.५

७९७ तदेव ननु पाण्डित्यं यत्संसारात् समुद्धरेत् । म. पु. ८.८६

७९८ गुणैरेव प्रीतिः सर्वत्र धीमताम् । म. पु. ६७.३१८

७९९ विद्वान्निगलको हि । म. पु. ६८.१४६

८०० विद्वांसः प्रमाणं जगतः परम् । प. पु. ९६.४९

८०१ नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः । प. पु. ९७.३०

व्रत

८०२ हितं नैव जीवितं व्रतभंजनात् । म. पु. ७४.४०८

८०३ नोल्लंघन्ते नियोगं स्वं मनस्विनः । प. पु. ७३.१५

८०४ न व्रतादपरो बन्धुर्नाव्रतादपरो रिपुः । म. पु. ७६.३७४

८०५ व्रतेन जायते सम्पत् । म. पु. ७६.३७८

— द्रव्य की शक्तियां विचित्र होती हैं।

— इस संसार में कोई भी वस्तु अविनश्वर नहीं है।

— बहुमूल्य वस्तु से अल्पमूल्य की वस्तु खरीदना कठिन नहीं है।

— नवीन वस्तु मनुष्यों को धैर्य देनेवाली होती है।

— नवीन वस्तु अधिक प्रिय होती है।

— केवल जाति से ही विशिष्टता नहीं होती।

— कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है।

— पण्डित समदर्शी होते हैं।

— पण्डितजन आत्मकल्याणार्थी होते हैं।

— पाण्डित्य वही है जो संसार से उद्धार कर दे।

— विद्वानों की सब जगह गुणों से ही प्रीति होती है।

— संकेत समझनेवाले ही विद्वान् होते हैं।

— जगत् में विद्वान् लोग ही परम प्रमाण हैं।

— साधारण मनुष्यों की बातों पर विद्वान् क्षुब्ध नहीं होते।

— व्रतभंग कर जीवित रहना हितकारी नहीं है।

— मनस्वी पुरुष अपने नियम का उल्लंघन नहीं करते।

— व्रत से बढ़कर कोई बंधु और अव्रत से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है।

— व्रत से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

८०६ उग्राभिर्वल्कलाभिश्च व्रतवानाभिभूयते । म. पु. ७६.३७५

८०७ जरन्तोऽपि नमन्त्येव व्रतवन्तं वयोनवम् । म. पु. ७६.३७६

८०८ वयोवृद्धो व्रताहीनस्तृणवद् गण्यते जनैः । म. पु. ७६.३७६

८०९ व्रती सफलवृक्षो वा निर्व्रतो वन्ध्यवृक्षवत् । म. पु. ७६.३७३

८१० वरं प्राणपरित्यागो व्रतभङ्गान्न जीवितम् । म. च. १९.११२

व्यवहार

८११ प्रायो मांगलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते । प. पु. ३४.४३

८१२ बन्धुषु नो युक्तं व्यवहर्तुमसाम्प्रतम् । प. पु. ८.२२३

व्यसन

८१३ कुर्याद् व्यसनोपहतो नु किम् ? ह. पु. २४.२२

८१४ द्यूतेन याति निःशेषं यशो लोकापवादतः । पा. पु. १६.११६

८१५ सर्वानर्थकरं द्यूतम् । पा. पु. २६.११७

८१६ द्यूतसमं पापं न भूतं न भविष्यति । पा. पु. १६.११९

८१७ द्यूतं दुर्धरदुःखदम् । पा. पु. १६.११८

८१८ नापरं व्यसनं द्यूतान्निकृष्टं । म. पु. ५९.७५

८१९ को न वा चलति वारुणीप्रियः । ह. पु. ६३.३०

८२० आश्रित्य वारुणीं रक्तः को न गच्छत्यधोगतिम् । म. पु. ४८.२६२

८२१ मांसभुक्तेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी । प. पु. २६.९८

८२२ यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः । प. पु. २६.७४

शक्ति

८२३ सदा विश्वजनीना हि विभुता भुवि वर्तते । ह. पु. ४९.८५

— उस देव भी व्रती का तिरस्कार नहीं करते ।

— व्रती पुरुष अवस्था में कम हो तो भी वृद्धजन उसे नमस्कार करते हैं ।

— लोग व्रतरहित वयोवृद्ध को तृण के समान समझते हैं ।

— व्रती फलसहित वृक्ष के समान है और अव्रती फलहीन वृक्ष के समान ।

— व्रतभंग कर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है ।

— लोग प्रायः मांगलिक व्यवहार में ही प्रवृत्त होते हैं ।

— बन्धुओं के साथ अनुचित व्यवहार करना उचित नहीं है ।

— व्यसनी मनुष्य सब कुछ कर डालता है ।

— द्यूत से लोकापवाद के कारण सम्पूर्ण यश नष्ट हो जाता है ।

— द्यूत सब अनर्थों की जड़ है ।

— द्यूत के समान पाप न हुआ है और न होगा ।

— द्यूत दुर्धर दुःखदायी होता है ।

— द्यूत से बढ़कर अन्य कोई निकृष्ट व्यसन नहीं है ।

— शराबी का पतन होता ही है ।

— शराबी की अधोगति होती ही है ।

— जो मांसभक्षण नहीं करता उत्तमगति उसके हाथ में ही है ।

— जो नर मांस खाता है वह अधम हो जाता है ।

— संसार में सच्ची प्रभुता सबका हित करनेवाली होती है ।

८२४ आघ्रस्यसहने सिंहे सुखायन्ते कियन्मृगाः । पा. पु. ७.१६

८२५ समर्थो न जहात्याशु निजं शीलं कदाचन । पा. पु. १७.११६

८२६ सत्त्वस्य को भरः ? प. पु. ३१.१११

८२७ प्राक्षोणिगिरिबिलस्थस्य किं करोतु मृगाधिपः । प. पु. २६.४६

८२८ सुसुप्तस्य प्रयत्नेऽपि तुलनायामकुलाभात् । प. पु. १०२.३५

८२९ गजेन्द्रप्रभृ गैर्धरणी न कम्पते । प. पु. ६६.८७

८३० न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः । प. पु. ६६.८६

८३१ न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः । प. पु. ६६.८७

८३२ नाखोः संक्षोभमायाति सिंहः । प. पु. ६६.५१

८३३ ता एव शक्तयो या हि लोकद्वयहितावहाः । म. पु. ५०.३७

८३४ सदसत्कार्यनिवृत्तौ शक्तिः सदसतोः समा । म. पु. ४४.६

८३५ तारयितुं शक्ता न शिला सलिले शिलाम् । प. पु. १४.२३२

८३६ बलवद्भिर्विरोधस्तु स्वपराभवकारणम् । म. पु. २८.१३६

८३७ भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे । प. पु. ६४.१११

८३८ ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी । प. पु. ६६.२६

८३९ न हि गण्डूपदान् हन्तुं वैनतेयः प्रवर्तते । प. पु. ८.१६०

८४० किमेभिः क्रियते काकैः संभूयापि गरुत्मतः ? प. पु. ८.१२६

शील

८४१ शीलतो बलधिनां णां क्षणतो गोष्पदायते । पा. पु. २१.६२

— दुर्दम सिंह के जागृत होने पर हरिण थोड़ी देर भी सुखी नहीं रह सकते ।

— समर्थ लोग अपना स्वभाव कदापि नहीं छोड़ते ।

— समर्थ के लिए कुछ भी भार नहीं है ।

— पहाड़ के बिल में स्थित चूहे का सिंह कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता ।

— सुकुमार प्राणी थोड़े कारण से भी दुःखी हो जाते हैं ।

— बैल के सींगों से पृथ्वी नहीं कांपती ।

— सिंह सियार पर क्रोध नहीं करता ।

— सूर्य की किरणों से समुद्र नहीं सूखता ।

— सिंह चूहे पर क्षुब्ध नहीं होता ।

— शक्तियां वे ही हैं जो दोनों लोकों में हितकारी हों ।

— अच्छे और बुरे कार्य करने की शक्ति सज्जन और दुर्जन दोनों में समान होती है ।

— शिला भी पानी में पड़ी शिला को नहीं तैरा सकती ।

— बलवान् पुरुषों के साथ विरोध अपने पराभव का कारण होता है ।

— संसार में एक से एक बढ़कर बलवान् होते हैं ।

— निश्चय ही सिंह महापर्वत की गुफा पाकर सुखी होता है ।

— गरुड़ जलवासी निर्विष सांपों को मारने का यत्न नहीं करता ।

— बहुत से कौवे मिलकर भी गरुड़ का कुछ बिगाड़ नहीं सकते ।

— शील के प्रभाव से समुद्र भी मनुष्यों के लिए क्षणभर में गाय के खुर के समान हो जाता है ।

८४२ शीलयुक्तो मृतः प्राणी स सुखी स्याद् भवे भवे । पा. पु. २१.९३

८४३ सर्वासामेव शुद्धीनां शीलशुद्धिः प्रशस्यते । ह. पु. १२.३१

८४४ शीलेन जायते नाकः । पा. पु. २१.८६

८४५ शीलं मुक्तिपदप्रदम् । पा. पु. २१.८९

८४६ ब्रह्मचर्यात्मकं शीलं । पा. पु. १.१२४

८४७ शीलं सद्गुणपालनम् । पा. पु. १.१२४

८४८ शीलाद् दासत्वमायान्ति सुरासुरनरेश्वराः । पा. पु. २१.८८

८४९ शीलेन सम्पदः सर्वाः । पा. पु. १७.२६३

८५० शीलतो नापरं शुभम् । पा. पु. १७.२६३

८५१ जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् । प. पु. ४६.९३

८५२ शीलं हि रक्षितं यत्नाद् आत्मानमनुरक्षति । म. पु. ४१.१०९

८५३ मेरुं शीलवती चित्तं न शक्यं मन्मथेन । म. पु. ६८.१९०

८५४ अभिभूतिः सशीलानामत्रैव फलदायिनी । म. पु. ५८.२३०

८५५ शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति । प. पु. ४६.९५

८५६ पुमान् जन्मद्वये शस्तो सुशीलः प्रतिपद्यते । प. पु. ७३.५८

संकल्प

८५७ अन्तरंगो हि संकल्पः कारणं पुण्यपापयोः । प. पु. १४.७६

८५८ संकल्पादशुभाद् दुःखं प्राप्नोति शुभतः सुखम् । प. पु. १४.५१

संयोग-वियोग

८५९ संयोगा विप्रयोगान्ताः । प. पु. ८.७७

८६० भंगुर संगमः सर्वः । म. पु. ४६.१९१

— शीलयुक्त प्राणी मरने पर प्रत्येक भव में सुखी होता है।

— सारी शुद्धियों में शीलशुद्धि प्रशंसनीय है।

— शील से स्वर्ग मिलता है।

— शील चक्रवर्ती पद का दाता है।

— ब्रह्मचर्य ही शील है।

— सद्गुणों का पालन करना शील है।

— सुर-असुर और शासक भी शील के प्रभाव से दास बन जाते हैं।

— शील से सब सम्पत्तियां मिल जाती हैं।

— शील सबसे बड़ा शुभ है।

— शीलवान् मनुष्य की दरिद्रता भी आभूषण है।

— प्रयत्नपूर्वक रक्षा किया हुआ शील ही आत्मा की रक्षा करता है।

— शीलवती स्त्री का चित्त कामदेव के द्वारा नहीं भेदा जा सकता।

— शीलवानों का तिरस्कार इसी लोक में फल दे देता है।

— शील का पालन करते हुए जो जीता है उसी का जीवन सफल है।

— शीलवान् की दोनों जन्मों में प्रशंसा होती है।

— अन्तरंग संकल्प ही पुण्य और पाप का कारण है।

— अशुभ संकल्प से दुःख और शुभ संकल्प से सुख मिलता है।

— संयोग के बाद वियोग अवश्यंभावी है।

— सभी संगम क्षणभंगुर हैं।

८६१ स्वप्न इव भवति चास्तसंयोगः । प. पु. ९०.२९

८६२ वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः । प. पु. १०५.११

८६३ विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते । प. पु. ८०.८२

८६४ प्रियस्य प्राणिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न । प. पु. १०५.८५

८६५ यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः । प. पु. १०५.१२

संगति

८६६ सतां योगः शुभाप्तये । पा. पु. १५.२०२

८६७ नान्यस्सत्संगमाद्धितम् । पा. पु. २.१६

८६८ यथाति धवलात्मतामधवलो हि शुभ्राश्रयात् । ह. पु. ६८.५२

८६९ कुसंगासंगतो नृणां जीवितान्मरणं वरम् । पा पु. २४.३५

८७० नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः । प. पु. ५३ २४०

८७१ मिथ्यादृशां संगः क्वचिदपि न वरम् । व. च. ९.१३३

८७२ साधोः संगमनाल्लोके न किंचिद् दुर्लभं भवेत् । प. पु. १३.१०१

८७३ थसे हि महतां योगः शममप्यशमात्मसु । म. पु. ३६.१७७

८७४ किं न स्यात्साधुसंगमात् ? म. पु. ६२.३५०

८७५ भवति किमिह नेष्टं संप्रयोगान्महद्भिः ? म. पु. ६३.५०८

८७६ किं करोति न कल्याणं कृतपुण्यसमागमः ? म. पु. ७३.८९

८७७ सत्संगमः किं न कुर्यात् ? म. पु. ७४.५४८

सज्जन/दुर्जन

८७८ स्खलति न स्थितितः सुजनः । ह. पु. ४१.३०

८७९ सज्जनो हि मनोदुःखं निवेदितमुदस्यति । ह. पु. ४५.७९

— सुन्दर वस्तुओं का समागम स्वप्न के समान होता है।

— दुःसह वियोग से मर जाना अच्छा।

— विरहकाल में स्वर्ग के समान देश भी नरकतुल्य जान पड़ता है।

— प्रिय प्राणी की मृत्यु तो अच्छी है किन्तु उसका विरह अच्छा नहीं है।

— विरह जीवनपर्यन्त चित्त को सन्ताप देता है।

— सज्जनों की संगति से शुभ की प्राप्ति होती है।

— सत्संगति से बढ़कर अन्य हितकर नहीं है।

— शुद्ध पदार्थ के आश्रय से बुरा भी अच्छा हो जाता है।

— कुसंगति में रहकर जीने से मनुष्यों का मरना अच्छा है।

— कुलीन मनुष्य नीच का आश्रय लेकर जीवित नहीं रह सकते।

— मिथ्यादृष्टियों का संग कहीं भी अच्छा नहीं है।

— लोक में साधु-समागम से बढ़कर अन्य कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है।

— महापुरुषों की संगति से क्रूर जीव भी शान्त हो जाते हैं।

— साधु-समागम से सब कुछ संभव है।

— महापुरुषों की संगति से सब इष्टसिद्धियां होती हैं।

— पुण्यात्माओं का समागम कल्याणकारी है।

— सत्संगति से सब कुछ हो सकता है।

— सज्जन अपनी मर्यादा से कभी विचलित नहीं होते।

— सज्जन बताने पर मन के दुःख को दूर कर देते हैं।

८८० सन्तो विरोधहाः । पा. पु. १२.४१

८८१ सन्तो गुणान्न मुञ्चन्ति दूरीभूतेऽपि सज्जने । पा. पु. १०.२३१

८८२ प्राणाः सतां न हि प्राणाः गुणाः प्राणाः प्रियास्सतः । म. पु. ६८.२११

८८३ ऋणवत्ते हि भाष्यन्ते ये स्थिता अनुपालने । प. पु. ११.५८

८८४ स नीचेषूसमस्पृहा । म. पु. ४५.१६५

८८५ प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधवः । प. पु. ८.५१

८८६ शिष्टास्तु क्षान्तिशौचादिगुणैर्धर्मपरा नराः । म. पु. ४२.२०३

८८७ महारण्येऽपि भव्यानां भवन्ति सुहृदो जनाः । प पु. १७.२८७

८८८ विधाय मानभंगं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् । प पु. ७६.१६

८८९ न हि मत्सरिणः सन्तो न्यायमार्गानुसारिणः । म. पु. ४३.१९९

८९० सन्तो हि हितभाषिणः । म. पु. ७०.३२५

८९१ प्रायः कल्पद्रुमस्येव परार्थं चेष्टितं सताम् । म. पु. ६३.२९९

८९२ परदुःखेन सन्तोऽमी त्यजन्त्येव महाश्रियम् । म. पु. ७१.१७३

८९३ सन्तो विचारानुचराः सदा । म. पु. ६८.६४२

८९४ सतां स सहजो भावो यत्स्तुवन्त्युपकारिणः । म. पु. ४७.१९९

८९५ अपकारेऽपि नीचानामुपकारः सतां भवेत् । म. पु. ७४.११०

८९६ गुणगृह्यो हि सज्जनः । म पु. १.३७

८९७ दुःखं हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् । प. पु १७.३३४

— सन्त विरोध मिटानेवाले होते हैं।

— सज्जनों के परोक्ष होने पर भी गुणवान् गुणों को नहीं छोड़ते।

— सज्जनों को गुण प्राणों से भी अधिक प्रिय होते हैं।

— जीवों की रक्षा करने में तत्पर लोग ही ऋषि कहलाते हैं।

— उत्तम पुरुष तुच्छ पदार्थों की इच्छा नहीं करते।

— साधु लोग विरुद्ध आचरण करनेवाले नहीं होते।

— धर्मात्मा शिष्टजन क्षमा, शौच आदि गुणों से युक्त होते हैं।

— भव्य जीवों को महान् वन में भी मित्र मिल जाते हैं।

— सत्पुरुष मानभंग करके ही कृतकृत्य हो जाते हैं।

— नीतिमार्ग पर चलनेवाले सत्पुरुष ईर्ष्या नहीं करते।

— सत्पुरुष हितभाषी ही होते हैं।

— प्रायः सज्जनों की चेष्टा कल्पवृक्ष के समान परोपकार के लिए ही होती है।

— सज्जन पुरुष दूसरे के दुःख के कारण महाविभूतियों का भी त्याग कर देते हैं।

— सज्जन हमेशा सद्विचारों का अनुसरण करते हैं।

— सज्जन स्वभाव से ही उपकारियों की स्तुति करनेवाले होते हैं।

— नीचजनों द्वारा किया गया अपकार भी सज्जनों के लिए उपकार रूप हो जाता है।

— सज्जन गुण से ही वश में होता है।

— सज्जन को बताया हुआ दुःख नष्ट हो जाता है।

८९८ उचितकरणकाले न स्खलन्ति प्रगल्भाः। ह. पु. ३६.६४

८९९ [illegible] हि प्राज्ञो [illegible] न [illegible] ह. पु. ५०.३१

९०० प्रभवो मितभाषिणः। म. पु. ३४.३०

९०१ सुनिश्चितानामपि सम्भाराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः। प. पु. ५८.४५

९०२ विचित्रचित्ताः पुरुषाः। प. पु. ११५.६३

९०३ न कस्योपकुर्वन्ति विशदाशयाः? म. पु. ७६.१८४

९०४ वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम्। प. पु. ५३.१०३

९०५ अलीकादपि हि प्रायो दोषाद्बिभ्यति सज्जनाः। प. पु. १७.३३६

९०६ कं न कुर्वन्ति सज्जना दर्शनोत्सुकम्। प. पु. ८.४८

९०७ पक्षपातो भवत्येव योगिनामपि सज्जने। प. पु. ७.१६०

९०८ अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः। पु. पु. ३३.३०६

९०९ प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः। प. पु. ४८.३२

९१० खली कुर्वन्ति लोका हि खलाः स्खलितमानसाः। पा. पु. १२.२००

९११ गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः। प. पु. १.३६

९१२ स्नेहो नापीलितात् खलात्। म. पु. ३१.१४०

९१३ अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां खलाः। प. पु. १.३७

९१४ मलिनाः कुटिला मुग्धैः पूज्यास्त्याज्या मुमुक्षुभिः। म. पु. ७४.३०७

९१५ न विदन्ति खलाः स्वैरा युक्तायुक्तविचेष्टितम्। म. पु. ७०.२५६

— चतुर मनुष्य उचित कार्य करते समय कभी नहीं चूकते ।

— विनाश के समय हठी मनुष्य अपना हठ नहीं छोड़ता ।

— प्रभावशाली लोग मितभाषी होते हैं ।

— निश्चयवान् सज्जनों का कार्य भी किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता ।

— पुरुष विचित्र चित्तवाले होते हैं ।

— निर्मल हृदयवाले सबका उपकार करते हैं ।

— जो अपने लाभ को नहीं समझता उसका जीवन पशु के समान है ।

— सज्जन पुरुष प्राय: मिथ्यादोष से भी डरते ही हैं ।

— सज्जनों से मिलने की उत्सुकता सबको होती है ।

— सज्जन के प्रति योगियों का पक्षपात होता ही है ।

— अपकारी पर भी जो करुणा करता है वह सज्जन है ।

— महापुरुषों का मन प्रणाममात्र से शांत हो जाता है ।

— दुरात्मा (दुष्ट पुरुष) लोगों को दुष्ट बना ही देते हैं ।

— असाधु पुरुष गुण और दोषों के समूह में से दोष ही ग्रहण करते हैं ।

— खल को पीड़ित किये बिना स्नेह नहीं मिलता ।

— दुष्ट पुरुष निर्दोष रचना में भी दोष ही देखते हैं ।

— मलिन और कुटिल जन अज्ञानियों द्वारा पूज्य और मुमुक्षुओं द्वारा त्याज्य होते हैं ।

— स्वच्छन्द दुष्ट योग्य और अयोग्य चेष्टाओं में अन्तर नहीं समझते ।

९१६ दुष्टा हिंसाविशेषेषु निरताः पापकारिणः । म. पु. ४२.२०३

९१७ खलो ह्यन्यस्तथासहः । म. पु. ६३.४६

९१८ कः प्रत्येति न दुष्टश्चेत् सद्‌भिर्निगदितं वचः । म. पु. ४७.२५३

९१९ दुष्टमाशीविषं गेहे वर्द्धमानं सहेत कः । म. पु. ५८.१००

९२० दुष्टानां नास्ति दुष्करम् । म. पु. ६२.३३६

९२१ प्रायः स्खलन्ति चेतांसि महत्स्वपि दुरात्मनाम् । म. पु. ३४.२१

९२२ नियाति दुर्गति जन्तुर्दुष्कर्मा प्रतिपद्यते । प. पु. ६७.३२

९२३ कष्टं दुष्टविचेष्टितम् । म. पु. ७१.१६६

९२४ दुश्चेष्टस्यास्तपुण्यस्य मूलं भावि विनश्यति । म. पु. ६८.५२९

९२५ गुणोऽपि न गुणः खले । म. पु. ६८.५६२

९२६ नज्ञं कर्तुं खलः शक्यः श्वपुच्छसदृशः । म. पु. १.८९

९२७ असतां दूयते चित्तं श्रुत्वा धर्मकथां सतीम् । म. पु. १.८६

९२८ मोहो जयति पापिनाम् । प. पु. ४८.६५

९२९ निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मंत्री क्षीयते मतिः । प. पु. ५३.२४८

९३० महद्‌भिरपि नो दानैरुपशाम्यन्ति दुर्जनाः । प. पु. ४८.३२

९३१ न को वाऽत्र दुश्चरित्राय कुप्यति । म. पु. ४३.६४

समय

९३२ कृतार्थस्य कालक्षेपो हि निष्फलः । ह. पु. ५२.८४

९३३ यान्ति कालानुभावेन मृदुतोऽपि कठोरताम् । ह. पु. ९.२८

९३४ तमः पतनकाले हि प्रभवत्यपि भास्वतः । ह. पु. १४.४०

— पापी लोग हिंसादि दोषों में लीन होते हैं।

— दुष्ट दूसरे की स्तुति सहन नहीं कर सकता।

— दुष्ट को छोड़कर सज्जनों के वचनों पर सब विश्वास करते हैं।

— घर में बड़े होते हुए दुष्ट विषैले सांप को कोई सहन नहीं करता।

— दुष्ट पुरुषों के लिए कोई भी कुकर्म दुष्कर नहीं है।

— प्राय: दुष्ट पुरुषों का हृदय बड़े लोगों का विरोधी बन जाता है।

— बुरे काम करनेवाला निश्चित ही दुर्गति को प्राप्त होता है।

— दुष्ट की चेष्टा कष्टदायी होती है।

— पुण्यहीन दुश्चरित्र मनुष्य का भूत और भावी सब बिगड़ जाता है।

— दुष्ट का गुण भी गुण नहीं होता।

— कुत्ते की पूंछ की तरह दुर्जन को भी सीधा नहीं किया जा सकता।

— अच्छी धर्मकथा सुनकर दुर्जनों का मन दु:खी होता है।

— पापियों का मोह बड़ा प्रबल होता है।

— दुष्ट को सैकड़ों प्रिय वचनों के द्वारा दिया गया हितोपदेश भी व्यर्थ होता है।

— दुर्जन बड़े-बड़े दान पाने पर भी शांत नहीं होते।

— इस संसार में दुराचारी पर सब कुपित होते हैं।

— कार्य हो चुकने पर समय गंवाना व्यर्थ है।

— समय के प्रभाव से कोमल भी कठोर बन जाते हैं।

— सूर्य के पतन के समय अन्धकार की प्रबलता भी हो ही जाती है।

९३५ कालो हि दुरतिक्रमः ।

९३६ प्राप्ते विनाशकाले हि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । प. पु. ५३.२४९

९३७ अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः । प. पु. ४०.३८

९३८ यद्गतं गतमेव तत् । प. पु. ४०.३९

९३९ को न कालबले बली । म. पु. ५६.११

सम्बन्ध

९४० सहितः समसम्बन्धः । म. पु. ४३.१९१

सम्यक्त्व/मिथ्यात्व

९४१ दर्शनेन विना पुंसां ज्ञानमज्ञानमेव भोः । व. च. १८.१२

९४२ दर्शनेन समो धर्मो जगत्त्रये न भूतो न भविता । व. च. ४.४३

९४३ परमं दर्शनं यत्नात् सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । प. पु. ३१.८५

९४४ सम्यग्दर्शनहानौ तु दुःखं जन्मनि-जन्मनि । प. पु. ६६.४१

९४५ सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसंशया । प. पु. २२.१७८

९४६ सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि दुर्लभम् । प. पु. ६६.४२

९४७ मिथ्यात्वमोहिता जीवा न हि श्रद्दधते वृषम् । गा. पु. २३.३२

९४८ किं न कुर्वन्त्यमी मूढाः प्रौढमिथ्यात्वचेतसः । म. पु. ७१.१६५

९४९ मिथ्यात्वदूषितधियामकथ्यं धर्मभेषजम् । म. पु. १.८७

९५० मिथ्यात्वेन समं पापं न भूतं न भविष्यति । व. च. ४.४४

साधु

९५१ ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः । प. पु. ११९.६१

— समय का उल्लंघन कठिन है।

— विनाशकाल प्राप्त होने पर प्राणी की बुद्धि नष्ट हो ही जाती है।

— बीते हुए (वे) दिन फिर लौट कर नहीं आते।

— जो समय चला गया वह चला ही गया।

— समय का बल पाकर सब बलवान् हो जाते हैं।

— बराबरीवालों के साथ सम्बन्ध कल्याणकारी होता है।

— सम्यग्दर्शन के बिना मानवों का ज्ञान अज्ञान ही है।

— तीनों लोकों में सम्यग्दर्शन के समान न तो कोई धर्म था और न कोई होगा।

— समस्त भावों में सम्यक्त्व ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है।

— सम्यग्दर्शन की हानि होने पर जन्म-जन्म में दुःख प्राप्त होता है।

— सम्यग्दर्शन से निःसन्देह ऊर्ध्वगति मिलती है।

— सम्यग्दर्शनरूपी रत्न साम्राज्य से भी दुर्लभ है।

— मिथ्यात्व से मोहित जीव धर्म पर श्रद्धा नहीं करते।

— प्रगाढ़ मिथ्यात्वी मूढ़ कोई भी कुकृत्य कर सकते हैं।

— मिथ्यात्व–रोग से दूषित व्यक्ति को धर्मरूपी औषधि अरुचिकर होती है।

— मिथ्यात्व के जैसा पाप न हुआ है, न होगा।

— ऋषि वे ही हैं जो निश्चय से परिग्रह अथवा याचना में बुद्धि नहीं रखते।

९५२ मानसानि मुनीनां हि मुविग्धान्यनुकम्पया । प. पु. ४८.४२

९५३ महात्मनामुपशमगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः । प. पु. ५०.५४

९५४ रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः । प.पु. १०६.१०७

९५५ तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः । प.पु. ११८.११०

९५६ मुनिवृत्तेरसंगत्वम् । म. पु. ८.२४६

९५७ गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः । प. पु. १.३५

९५८ साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति । प. पु. १७.१७१

९५९ साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वममीप्सितं लभन्ते । प. पु. ९२.९२

९६० सतां हि साधुसम्बन्धाच्चित्तसमाजनमीयते । प. पु. ११०.२५

सुख/दुःख

९६१ स्वसुखं को न वाञ्छति ? प. पु. १४.३०९

९६२ सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः । प.पु. १०५.१९०

९६३ सुखं दुःखानुबन्धि । म. पु. ८.७७

९६४ मनसोनिर्वृतिं सौख्यमुशन्तीह विचक्षणाः । म. पु. ४२.११९

९६५ यथावस्थितभावानां श्रद्धानं परमं सुखम् । प. पु. ४३.३०

९६६ प्रभवहेतवोऽपि सुखयन्ति नो दुःखितान् । ह. पु. ४२.१०२

९६७ परीषहजयायत्ता सिद्धिरिष्टा महात्मनः । म. पु. ४२.१२६

९६८ शोको हि नाम कोऽप्येष विषमेदो महत्तमः । प. पु. ४५.८१

९६९ शोको हि पण्डितैर्दृष्टः पिशाचो भिन्ननामकः । प. पु. ६.४८०

— मुनियों के मन अनुकम्पा से युक्त होते हैं।

— उन्नत गर्वशाली और बलशाली मनुष्य भी महात्माओं के वशीभूत हो जाते हैं।

— राग-द्वेषरहित श्रमण ही पुरुषोत्तम है।

— सारे सुख उन्हें ही प्राप्त हैं जो श्रमण हो गये हैं।

— मुनियों की वृत्ति परिग्रहरहित होती है।

— सत्पुरुष गुण और दोषों के समूह में से केवल गुणग्राही होते हैं।

— साधुवर्ग सभी प्राणियों का कल्याण चाहता है।

— साधु समागम करनेवालों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

— साधु-सम्बन्ध से सज्जनों का चित्त आनन्दित होता है।

— अपने लिए सब सुख चाहते हैं।

— सिद्धजीवों के सुख से उत्कृष्ट सुख दूसरा नहीं है।

— सुख की परिणति दुःख में होती है।

— विद्वान् लोग मन की निराकुलता को ही सुख कहते हैं।

— जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना परम सुख है।

— दुःखी मनुष्यों को सुखद वस्तुएं भी सुखी नहीं करतीं।

— महात्मा को परीषह-जय से इष्टसिद्धि होती है।

— शोक सबसे बड़ा विघ्नभेद है।

— पण्डितों ने शोक को ही दूसरा नाम पिशाच दिया है।

९७० विवेकेन हि निर्मुक्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः । प. पु. १८.४७

९७१ उद्वेगकरणं मात्र कारणं दुःखमोचने । प. पु. ८३.१३२

स्थान

९७२ कथं सह्या पादे चूडामणिस्थितिः । म. पु. ६२.४३९

स्वजन

९७३ जननी जगन्मान्या । पा. पु. १२.३१६

९७४ मान्या जनैः सदा पूज्या जन्मदात्री वधावहा । पा. पु. १२.३१७

९७५ संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदंजसा । प. पु. ३१.५८

९७६ कृत्यं किं बान्धवैर्येन समर्था दुःखमोचने । प. पु. ११.३५४

९७७ बन्धुरपि शत्रुरसौख्यदः । प. पु. १७.३०२

९७८ यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य स परमः बान्धवः । प. पु. १०.१७८

९७९ मिलिते स्वीये कस्य सौख्यं न जायते । पा. पु. १७.६९

स्वामी/शासक/भृत्य

९८० यथा राजा तथा प्रजाः । प. पु. १०६.१५६, पा. पु. १७.२६०

९८१ मर्यादानां नृपो मूलम् । प. पु. ५३.५

९८२ प्रजानां रक्षितारस्ते कण्टकास्तु हि मारकाः । म. पु. ७०.४६४

९८३ कण्टकोद्धरणेनैव प्रजानां क्षेमधारणम् । म. पु. ४२.१६४

९८४ तरौ चलति शाखाद्या विशेषान्न चलन्ति किम् ? म. पु. ६.६

९८५ न पूजयन्ति के पुरुषं राजपूजितम् ? म. पु. ४५.११५

९८६ प्रायेण स्वामिशीलत्वं संश्रितानां प्रवर्तते । म. पु. ७४.२१७

— दु:खीजन विवेक से रहित हो ही जाते हैं ।

— उद्वेग करना दु:ख से छूटने का कारण नहीं है ।

— पैरों में चूडामणि का पहनना सहन नहीं होता ।

— माता संसार में पूज्य है ।

— दयामयी जन्मदात्री माता लोगों द्वारा सदा पूज्य मानी गई है ।

— इस संसार में न तो कोई अपना है न कोई पराया ।

— जो दु:ख दूर नहीं कर सकते ऐसे बंधुओं से कोई लाभ नहीं है ।

— दु:ख देनेवाला बंधु भी शत्रु ही है ।

— जो जिसके मन को अच्छे कार्य में लगा देता है वही उसका परम बन्धु है ।

— स्वजनों से मिलने पर सबको सुख होता है ।

— जैसा शासक होता है वैसी ही जनता हो जाती है ।

— शासक मर्यादाओं का मूल है ।

— खेद है, प्रजा के रक्षक ही अब भक्षक हो गये हैं ।

— समाजकण्टकों को दूर करने से ही जनता का कल्याण हो सकता है ।

— वृक्ष के हिलने से उसकी शाखाएं भी हिलती ही हैं ।

— राजमान्य पुरुष की सब पूजा करते हैं ।

— आश्रितों का स्वभाव प्राय: स्वामी के समान ही हो जाता है ।

९८७ तदेव राज्यं राज्येषु प्रजानां यत्सुखावहम् । म. पु. ५२.४०

९८८ तृणाग्रबिन्दुवद्राज्यं । पा. पु. १५.२१५

९८९ सकृज्जल्पन्ति राजानः । प. पु. ४६.९८

९९० परगर्वापसादं हि समीहन्ते नराधिपाः । प. पु. १३४

९९१ स्वामिप्रसादलाभो हि वृत्तलाभोऽनुजीविनाम् । म. पु. ३२.१००

९९२ भर्तृसेवा हि भृत्यानां स्वाधिकारेषु सुस्थितिः । ह. पु. ५९.२१

९९३ परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः । प. पु. ६६.३

९९४ विप्रिये ननु संप्रीत्यै सत्कारः प्रभुणा कृतः । म. पु. ७.१८१

९९५ निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् । प. पु. ९७.१४८

९९६ धिग्भृत्यतां जगन्निन्द्याम् । प. पु. ९७.१४०

स्वास्थ्य

९९७ सौख्याभावे कुतः स्वास्थ्यं, स्वास्थ्याभावे
कुतः कृती । ह. पु. १८.१५२

९९८ स्वस्थे चित्ते हि बुद्धयः । ह. पु. ९.११६

९९९ उत्पन्नाचैव रोगस्य क्रियते ध्वंसनं सुखम् । प. पु. १२.१६१

१००० नामधो गोपनीये हि जनन्याः । म. पु. ६.११८

१००१ अस्वस्थस्य कुतः सुखम् ? म. पु. ५१.६७

१००२ निर्व्याधिः स्वास्थ्यमापन्नः कुरुते किन्नु भेषजम् । म. पु. ११.१७०

हिंसा/अहिंसा

१००३ हिंसा हि संसृतेर्मूलम् । प. पु. २.१८१

१००४ अहिंसा प्रवरं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । प. पु. २६.१००

— राज्यों में राज्य वही अच्छा है जो जनता को सुख दे।

— राज्य तिनके के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान है।

— शासक एक बार ही बोलते हैं।

— राजा दूसरों का अहंकार नष्ट करना चाहते हैं।

— स्वामी की प्रसन्नता से ही सेवकों को आजीविका प्राप्त होती है।

— भृत्यों द्वारा अपना कर्तव्यपालन करना ही सच्ची स्वामिभक्ति है।

— निर्भीक अनुजीवियों का उपदेश ही परमार्थ है।

— स्वामी द्वारा किया हुआ सत्कार सेवकों की प्रीति के लिए होता ही है।

— मद से शून्य और परतन्त्र भृत्य के जीवन को धिक्कार है।

— लोकनिन्द्य दासवृत्ति को धिक्कार है।

— सुख के बिना स्वास्थ्य और स्वास्थ्य के बिना कृतकृत्यता संभव नहीं।

— मन स्वस्थ होने पर ही बुद्धि स्थिर रहती है।

— रोग को उत्पत्तिकाल में ही सरलता से शांत किया जा सकता है।

— माता से रोग नहीं छुपाया जाता।

— अस्वस्थ सुखी नहीं होता।

— नीरोगी मनुष्य को औषधि सेवन करने की आवश्यकता नहीं होती।

— हिंसा ही संसार का मूल कारण है।

— अहिंसा ही धर्म का श्रेष्ठ मूल है।

विविध

१००५ अदेशकालं न हि नर्म शोभते । ह. पु. ५४.६९

१००६ अनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः । प. पु. ४३.१२३

१००७ अभ्यासात् किं न जायते ? म. पु. ४४.२३०

१००८ अर्केणालोकनारोधि हन्यते जगतस्तमः । म. पु. ४५.१६

१००९ उच्छिष्टभोजनं भोक्तुं भद्रे वाञ्छति को नरः ? प. पु. १२.१२६

१०१० उदितस्य सूर्यस्य निश्चितोऽस्तमयः पुरा । म. पु. ६.१९

१०११ उन्मार्गः कं न पीडयेत् ? पा. पु. ३.१२०

१०१२ कष्टमनिष्टेष्ट परम्परा । म. पु. ४५.१६७

१०१३ तमसः प्रकटे वैरे कुतः स्थानं रवौ सति । प. पु. ३१.८९

१०१४ दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । प. पु. ४१.१०१

१०१५ नवोऽनुरागबन्धो हि चन्द्रः । प. पु. ४७.१२

१०१६ न विना पीठबन्धेन विधातुं सद्म शक्यते । प. पु. ३.२८

१०१७ न हि कश्चिद् गुरोः खेदः शिष्ये शक्तिसमन्विते । प. पु. १००.५०

१०१८ बहिरङ्गो विधिः कुर्यादन्तरङ्गे विधौ तु किम् ? ह. पु. १४.८६

१०१९ भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमः सुखम् । प. पु. १००.५१

१०२० भटेषु भटमत्सरः । म. पु. ४३.२२३

१०२१ भ्रान्त्या प्रवर्तमानानां कुतः क्लेशाद् विना फलम् ? म. पु. ४६.६०

१०२२ प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ? म. पु. ६३.३०९

१०२३ मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुन्धरा । प. पु. १३.२८

— देश और काल के विपरीत हंसी शोभा नहीं देती।

— कर्तव्यपालन करनेवालों को ही सुख-शान्ति मिलती है।

— अभ्यास से सब कुछ होता है।

— संसार के प्रकाश को रोकनेवाले अंधकार का सूर्य ही नाश करता है।

— उच्छिष्ट भोजन करना कोई नहीं चाहता।

— उदित हुए सूर्य का अस्त पूर्व निश्चित है।

— उन्मार्ग सबको दुःखी करता है।

— इष्ट-अनिष्ट की परम्परा दुःखदायी होती है।

— सूर्य से प्रकाशित स्थान में अंधेरा नहीं रह सकता।

— दूसरे का उदाहरण भी शांति का कारण बन जाता है।

— नवोदित चन्द्रमा को ही सब नमस्कार करते हैं।

— बिना नींव के भवन नहीं बनाया जा सकता।

— शिष्य के सशक्त होने पर गुरु को कुछ भी खेद नहीं होता।

— आन्तरिक रोग में बाह्य उपचार व्यर्थ है।

— पूर्व संस्कार से युक्त मनुष्यों को गुणों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

— योद्धा योद्धाओं से ही ईर्षा करते हैं।

— भ्रान्ति में पड़े लोगों को कष्ट के बिना फल नहीं मिलता।

— कीचड़ में पैर रखकर उसे धोने की अपेक्षा उससे दूर रहना ही अच्छा।

— माता की तरह ही जन्मभूमि का त्याग भी नहीं किया जा सकता।

१०२४ यः समुत्तरणोपायः स मार्गः [illegible] म. पु. ६२.४०

१०२५ योऽमुष्मं करुणा चेत्सि त्वयमेतद्विरुध्यते । प. पु. ७२.६४

१०२६ रत्नानि ननु तान्येव यानि यान्त्युपयोगिताम् । म. पु. ३७.१६

१०२७ रुचिश्चित्रा हि देहिनाम् । म. पु. ४३.३०४

१०२८ बालेनापहृतसिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत् ? प. पु. ४६.२०६

१०२९ विषकणः प्राप्तः सरसीं नैव दुष्यति । प. पु. १४.६५

१०३० शास्त्रमुच्यते तद्धि यस्मात्पूर्वकृताहित सर्वस्मै जगते हितम् । म. पु. ११.२०६

१०३१ स्नेहशोकार्तचेतसां का विचारणा ? म. पु. ७०.२१

१०३२ हित्वा वार्द्धिं महासिन्धुप्रसरः किं प्रसर्पति । पा. पु. ७.९५



— संसार सागर से पार होने का उपाय ही मार्ग है।

— युद्ध करना और करुणा करना ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

— रत्न वे ही हैं जो उपयोग में आवें।

— प्राणियों की रुचि विचित्र होती है।

— वायु से पानी की एक बूंद उड़ जाने से समुद्र में कोई कमी नहीं आती।

— विष का एक कण सारे तालाब को दूषित कर सकता है।

— शास्त्र वही है जो माता के समान सबके लिए हितोपदेशी हो।

— स्नेह और शोकयुक्त मन में विचारशक्ति नहीं होती।

— महानदी समुद्र को छोड़कर सरोवर की ओर नहीं जाती।

